गुलेरीजी की अमर कहानियाँ

लेखक

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

स्व० श्री गुलेरी हिन्दी-साहित्य [illegible] और
उनकी कहानी "उसने कहा था" न केवल भारतीय
कथा-साहित्य में अद्वितीय है वरन् संसार के साहित्य
[illegible] निधि है। इसके साथ ही गुलेरीजी
और कहानियाँ यहाँ संग्रहीत हैं।

मूल्य बारह आना

सरस्वती प्रेस बनारस

तृतीय संस्करण,
मई
१९४९

सूची

मुद्रक
श्रीपतराय
सरस्वती प्रेस
बनारस

वक्तव्य

प्रसिद्ध लेखक राफ़ेल के एक ग्रन्थ में वर्णन आता है कि जब सत्य की खोज में लोग मन्दिर पहुँचे तो वहाँ की पुजारिन ने उन्हें पीने के लिए एक प्रकार की मदिरा दी। वह मदिरा किसी को मीठी, किसी को तिक्त, तथा किसी को कड़वी लगी। मदिरा एक थी, किन्तु उसका स्वाद भिन्न-भिन्न। इसी तरह कला की किसी भी वस्तु का मूल्य आँकने में मतभेद पाये जाते हैं। कलाविशेषज्ञों के मतभेद प्रिय होते हुए भी गुलेरीजी की 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी एक कण्ठ से हिंदी-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानी घोषित की गयी है।

साहित्य-महारथियों ने इसे हिन्दी की पहली तथा एकमात्र यथार्थवादी कहानी स्वीकार किया है। केवल साहित्य-महारथियों ने ही नहीं, किन्तु स्कूल, कॉलेज तथा युनिवर्सिटी में पढ़नेवाले विद्यार्थियों ने भी, जो कि कला के सच्चे समालोचक हैं, इसे अपने 'हृदय की वस्तु' माना है। यह अप्रान्तिकता, असामयिकता तथा सार्वजनिकता ही 'उसने कहा था' की अमर विशेषताएँ हैं।

एक प्रसिद्ध साहित्यिक ने गुलेरीजी के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए मुझे एक पत्र में लिखा था कि यदि गुलेरीजी 'उसने कहा था', जैसी दस कहानियाँ लिख जाते तो निस्सन्देह विश्व-कहानी-साहित्य में उनका स्थान विक्टरह्यूगो, टॉल्सटॉय, मोपासाँ तथा तुर्गनेव से बहुत ऊँचा होता!

गुलेरीजी की अन्य दो कहानियाँ आपके सामने हैं। आशा है हिन्दी-प्रेमी इन्हें भी अपनायेंगे। सुखमय-जीवन शीर्षक कहानी सन् १९११ में 'भारतमित्र' में छपी थी, 'बुद्धू का काँटा' किस पत्र या पत्रिका में छपी थी, यह मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता हूँ। शायद यह सन् १९११-१५ के बीच में लिखी गई थी।

अमर गल्प 'उसने कहा था' अक्टूबर सन् १९१५ की सरस्वती में छपी थी। हिन्दी-प्रेमियों के हृदय में 'उसने कहा था' के लिए जो स्थान है, वह शायद ही किसी एक हिन्दी कृति के लिए हो। गुलेरीजी की अन्य कहानियाँ

अप्राप्य हैं। यह हिन्दी के अभाग्य का विषय है कि गुलेरीजी जैसे रचनात्मक लेखक ने पुरातत्त्व, संस्कृत तथा प्राचीन इतिहास-सम्बन्धी खोज के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया।

*गुलेरीजी के पिता पण्डित शिवराम शास्त्री जयपुर के धार्मिक-कार्यों के निर्णय करने में सर्वेसर्वा मौजमन्दिर सभा के प्रधान सभापति तथा स्थानीय संस्कृत कॉलेज के प्रिन्सिपल थे। वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक तथा वैयाकरण कहे जाते थे।

पण्डित चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी का जन्म २५ आषाढ़ संवत् १९४० में जयपुर में हुआ था। सन् १८९९ में आप प्रयाग विश्वविद्यालय की ऐन्ट्रेन्स परीक्षा में सर्वप्रथम रहे। इस उपलक्ष में जयपुर राज्य ने आपको एक स्वर्णपदक प्रदान किया। इसी वर्ष कलकत्ता युनिवर्सिटी की ऐन्ट्रेन्स

सम्पादक

परीक्षा में आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। सन् १९०२ में जब कर्नल सर स्विण्टन जेकब तथा कैप्टेन गैरेट जयपुर के ज्योतिष-यन्त्रालय के जीर्णोद्धार के लिए नियुक्त हुए तो उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता हुई जो संस्कृत का धुरंधर विद्वान् होने के साथ-साथ पाश्चात्य की दो-तीन भाषाओं का भी ज्ञाता हो। गुलेरीजी इस कार्य्य के लिए चुने गये। गुलेरीजी ने मानमन्दिर के जीर्णोद्धार में सहायता की तथा सम्राट-सिद्धान्त नामक ज्योतिष-ग्रन्थ का अनुवाद किया। १८ वर्ष की अवस्था में कैप्टेन गैरेट के सहयोग से आपने 'Jaipur abservatory and its builder' नामक विशाल ग्रन्थ लिखा। इस उपलक्ष में जयपुर राज्य ने ३००) की पुस्तकें प्रदान कर गुलेरीजी को सम्मानित किया। सर स्विस्वण्टन जेकब तथा कैप्टेन गैरेट ने गुलेरीजी को प्रशंसापत्र प्रदान किये, जिनमें उन्होंने गुलेरीजी को भारतीय ज्योतिषशास्त्र का प्रकाण्ड तथा असाधारण पण्डित स्वीकार किया।

सन् १९०४ में गुलेरीजी प्रयाग विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा में

* 'गुलेरीग्रन्थ' जिसमें गुलेरीजी के प्रायः सभी लेख होंगे, लगभग ८०० पृष्ठ में शीघ्र ही प्रकाशित होगा। उसमें गुलेरीजी की जीवनी छपेगी।

सर्वप्रथम रहे। इस उपलक्ष में इन्हें विश्वविद्यालय से नौर्थब्रुक स्वर्ण-पदक मिला। जयपुर-राज्य ने भी एक स्वर्णपदक तथा ३३०) की पुस्तकें प्रदान कर गुलेरीजी को सम्मानित किया।

सन् १९०४ में गुलेरीजी खेतड़ी के राजा जयसिंह के अभिभावक तथा शिक्षक बनकर मेयोकॉलेज अजमेर भेजे गये। आपने संस्कृत के प्रधान अध्यापक के पद को भी सुशोभित किया। सन् १९१७ में आप जयपुर राज्य के समस्त सामन्तों के अभिभावक बनाये गये। मेयो कॉलेज में काश्मीर के महाराज हरीसिंह प्रतापगढ़ के नरेश रामसिंहजी, ठाकुर अमरसिंह (आर्मी मिनिस्टर जयपुर), गीजगढ़ के ठाकुर कुशालसिंह तथा रोहेट के ठाकुर दलपतसिंह आपके प्रिय शिष्यों में से थे।

सन् १९०४ से १९१७ तक का समय गुलेरीजी के जीवन में विशेष महत्त्व रखता है। इसी समय में गुलेरीजी ने विशेष अध्ययन किया तथा बहुत से लेख लिखे, जिसके फलस्वरूप वे पुरातत्त्व, भाषातत्त्व, प्राचीन इतिहास, संस्कृत, वैदिक-संस्कृत, पाली तथा प्राकृत के सर्वश्रेष्ठ विद्वानों में गिने जाने लगे। सन् १९०० में गुलेरीजी जयपुर के जैनवैद्यजी की सहायता से नागरी-भवन की स्थापना की थी तथा कई वर्षों तक इन्होंने जयपुर से प्रकाशित होनेवाले हिन्दी पत्र 'समालोचक' का सम्पादन किया। गुलेरीजी के लेख हिन्दी के प्रायः सभी मुख्य पत्रों में छपते थे : गुलेरीजी कई वर्षों तक नागरीप्रचारिणी सभा के सभापति भी रहे। देवीप्रसाद-ऐतिहासिकपुस्तक-माला तथा सूर्य्यकुमारी पुस्तक-माला गुलेरीजी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई। गुलेरीजी की 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक लेख-माला तथा काशीप्रसाद जायसवाल से मतभेद प्रकट करते हुए शिशुनाग मूर्तियों पर लेख उनके प्रगाढ़ पाण्डित्य के परिचय हैं। डाक्टर ग्रियर्सन ने गुलेरीजी की 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक लेख-माला की भूरि भूरि प्रशंसा की थी। A signed Molarama [Rupam No. 2, 1920], Kakatika monks [The Indian Antiquary 1913], On Siva-Bhagavata in Patanjali's Mahabhasya [Indian Antiquary 1912] शीर्षक लेख ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व के हैं।

सन् १९२० में विद्वानों के पारखी पण्डित मदनमोहन मालवीय का निमन्त्रण पाकर आपने मनीन्द्रचन्द्र नन्दी स्कॉलर[1] तथा प्रिन्सपल कॉलेज ऑफ ओरियंटल लर्निङ्ग एण्ड थियोलौजी के के पद को सुशोभित कर हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस का गौरव बढ़ाया।

११ सितम्बर १९२२ को ३९ वर्ष की अल्पायु में गुलेरीजी का देहावसान हुआ।

गुलेरीजी लेटिन, फ्रेंच तथा जर्मन के भी ज्ञाता थे। बँगला तथा मराठी के तो आप असाधारण पण्डित थे। पुरातत्त्व, दर्शन, भाषातत्त्व, लिपि-शास्त्र प्राचीन इतिहास, संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा हिन्दी के तो आप धुरंधर तथा प्रकाण्ड विद्वान् माने जाते थे। गुलेरीजी हिन्दी गद्य के विकास के संस्कृतयुग के प्रधान कर्णधारों में थे।

पुस्तक खेतड़ी के सुयोग्य शासक स्वर्गीय राजा जयसिंह को समर्पित की गई है। राजाजी का संक्षिप्त जीवन, जो कि श्री झाबरमल्ल शर्मा द्वारा लिखित खेतड़ी के इतिहास से लिया गया है, नीचे दिया जाता है।

'राजा जयसिंहजी बहादुर, ३० वीं जनवरी सन् १९०१ तदनुसार माघ शुक्ला ११ सं० १९५७ बुधवार खेतड़ी की गद्दी पर बैठे। उस समय उनकी अवस्था केवल ८ वर्ष की थी।

आरम्भ में राजा जयसिंहजी बहादुर को खेतड़ी शिक्षा।
विभाग के सुपरिण्टेण्डेण्ट पं० शङ्करलालजी शर्मा विद्याभ्यास कराते थे। उसी समय पढ़ने में उनकी संलग्नता देखकर लोग चकित होते थे।

सन् १९०४ की ११ वीं जुलाई को राजाजी अपने अभिन्न-बन्धु ठाकुर दलपतसिंहजी के साथ मेयो कालेज (अजमेर) में शिक्षाप्राप्ति के लिए प्रविष्ट हुए। हिन्दी-संसार के प्रसिद्ध पण्डित चन्द्रधरजी शर्मा गुलेरी बी० ए० आपके अभिभावक और शिक्षक (गार्जियन एण्ड ट्यूटर) बनाये गये। आपके मामा लाम्बियाँ के ठाकुर साहिब शिवदानसिंहजी आपकी देखरेख करने लगे। विद्याप्राप्ति और गुण-सञ्चय में आपकी एकाग्रता देखकर मेयोकालेज का

---

[1] इसी पद को पहले राखालदास बन्द्योपाध्याय Acting Director General of Archaeology in India तथा Dr. D. R. Bhandarkar ने सुशोभित किया था।

अध्यापक-समुदाय, जयपुर के रेजिडेण्ट और ए० जी० जी० तक सब मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते थे। पं० चन्द्रधर गुलेरीजी की प्रकृत शिक्षा ने राजा जयसिंहजी को विनय और सौजन्य से अलंकृत कर दिया था। अध्ययन के समय वे किसी से भी बात नहीं करते थे और न क्षुद्र लोगों का सङ्ग ही उन्हें पसन्द था। उनके मौसेरे भाई बिसाऊ के चीफ़ श्रीमान् विशनसिंहजी, रोहेट के श्रीमान् ठा० दलपतसिंहजी (सम्प्रति राव बहादुर तथा जोधपुर दरबार के मिलिटरी सेक्रेटरी) तथा गौजगढ़ के श्री ठा० सा० कुशलसिंहजी प्रभृति आपके सहाध्यायी बन्धु तथा मित्र थे। किसी तरह का कोई दुर्व्यसन आपको न था। आपने अपने समशील बन्धुओं और मित्र की एक मण्डली बना ली थी। स्वयं चरित्रवान् थे ही—दूसरों से भी सच्चरित्र रहने की प्रतिज्ञा कराते थे। जिस शराब ने क्षत्रिय जाति को बरबाद कर दिया है, उससे आपको कतई परहेज़ था। खेतड़ी के हाईस्कूल को कालेज बनाने की अपने पिता अजितसिंहजी की अपूर्ण इच्छा को पूर्ण करने का वे विचार रखते थे। इमारतें बनवाने का भी चाव था। कोठी जयनिवास का शिलारोपण आपने स्वयं किया। जब-जब राजाजी का कालेज की छुट्टियों में खेतड़ी में आगमन होता था, तब ना स्कूल आदि का स्वयं निरीक्षण किया करते थे। शेखावाटी के क्षत्रियों में शिक्षा का विस्तार करने की आवश्यकता का वे हृदय से अनुभव करते थे। कई एक क्षत्रिय बालकों को लिए उन्होंने सहायता देकर उत्साहित भी किया था। संवत् १९६४ में पण्डित चन्द्रधरजी गुलेरी जयपुर राज्य के समस्त सामन्तों की शिक्षा के सुपरिंटेंडेण्ट बना दिये गये थे और पं० सूर्यनारायणजी पाण्डेय एम० ए० को राजाजी बहादुर की शिक्षा का भार सौंपा गया। श्री० पाण्डेयजी ने भी बड़ी दत्तता से अपने कर्तव्य का पालन किया।

सन् १९०९ में राजा जयसिंहजी की उपस्थिति में ही खेतड़ी हस्पताल को राजा अजीतसिंहजी के स्मारक का रूप दिया गया था और हस्पताल के भवन का जयपुर के रेजिडेण्ट साहब द्वारा उद्घाटन कराके "अजीत हास्पिटल" नाम किया गया था।

खेतड़ी की प्रजा की परिस्थिति जानने के लिए संवत् १९६५-६६ में राजाजी बहादुर ने अपने शिक्षक प० सूर्यनारायणजी पांडेय एम० ए० तथा

राजमुनसरिम पं० शिवनाथजी चक के साथ दौरा भी किया था। सब लोगों से बड़े प्रेम से मिलते थे और बातें करते थे। व्यायाम का भी आपको खूब शौक था। क्रिकेट और फुटबाल अच्छा खेलते थे। घोड़े की सवारी और बंदूक का निशाना लगाने का अभ्यास पूरा कर चुके थे। सिगरेट और तंबाकू आदि से घृणा रखते थे। हिन्दी भाषा के बड़े प्रेमी अतएव आग्रही थे। धार्मिक कृत्य अन्य कितने ही राजाओं और ठाकुरों की भाँति प्रतिनिधित्वेन पुरोहित द्वारा न कराके स्वयं श्रद्धापूर्वक करते थे। उनके देदीप्यमान मुख-मण्डल को देखकर खेतड़ी की प्रजा राजा अजीतसिंहजी का प्रतिरूप देखने का आनन्दानुभव करने लग गई थी। परन्तु काल की कुटिल गति और खेतड़ी की प्रजा के दुर्भाग्य से प्रबल क्षय-रोग से आक्रान्त होकर ३० वीं मार्च सन् १९१० को जयपुर में राजाजी बहादुर परलोकवासी हो गये। इसी वर्ष वे मेयोकालेज से परीक्षोत्तीर्णता का डिप्लोमा प्रशंसा के साथ पानेवाले थे। हिन्दी की गौरवमयी पत्रिका सरस्वती के तत्सामयिक मनस्वी सम्पादक विद्वद्वर पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने सरस्वती में एक विस्तृत टिप्पणी लिखते हुए राजा जयसिंहजी बहादुर के सम्बन्ध में लिखा था—'राजपूताना के राजाओं की पिछली पीढ़ी और आगामी पीढ़ी में ऐसा होनहार और सद्गुण-सम्पन्न युवक और कोई नहीं हुआ। उनके विनय, शील, विद्याभिनिवेश, सदा हँसता हुआ मुख, देश-प्रेम और लोकोपकार के उच्च विचार सभी का स्मरण इस अकाल मृत्यु की वेदना को और काल की कराल गति के अनुशोचन को कई गुना कर देता है। संस्कृत और हिन्दी की ओर उनका प्रेम बहुत था और दोनों को कितना ही उपकार उनके हाथों होता।"

जयसिंह के विद्यानुराग प्रतिभा तथा दया की कहानियाँ प्रचलित हैं। चारण अभी भी उनका यशगान करते हैं।

जयसिंहजी की मृत्यु से गुलेरीजी को विशेष धक्का लगा। उन्हें मेयो कॉलेज सूना लगने लगा। मालवीयजी का निमन्त्रण पाते ही वे मेयोकॉलेज छोड़कर बनारस चले गये। गुलेरीजी ने अपनी डायरी के एक पृष्ठ में स्वर्गीय जयसिंह की प्रशंसा करते हुए लिखा है, 'मेयो कॉलेज के इतिहास मे ऐसे प्रतिभा-शाली राजकुमार कम ही देखने मे आये होंगे।'

स्व० राजा जयसिंह की ज्येष्ठा भगिनी स्वर्गीया सूर्य्यकुमारी जी शाहपुरा-नरेश राजाधिराज उम्मेदसिंह की पत्नी थीं तथा हिन्दी से उनका विशेष अनुराग था। कनिष्ठा भगिनी चन्द्रकुमारी जी प्रतापगढ़ राज्य की राजमाता हैं। आप राजस्थान में राजनीति की अग्रगण्य पण्डिता मानी जाती हैं तथा उदारता, दया तथा प्रजा-वात्सल्य की प्रतिमूर्ति हैं। धर्म तथा विद्या की उन्नति के लिए हज़ारों रुपया दान करती हैं। हिन्दी की उन्नति से आपको विशेष स्नेह है। आपके पुत्र सर रामसिंहजी के० सी० एस्० आई० सुयोग्य शासक हैं।

यह कहना अनुचित न होगा कि जयसिंहजी, चन्द्रकुमारीजी तथा स्वर्गीया सूर्य्यकुमारीजी के स्नेह ने गुलेरीजी के पाण्डित्य के विकास में अत्यधिक सहायता पहुँचायी।

प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस् चान्सलर गुरुवर प्रोफ़ेसर पण्डित अमरनाथजी झा, एम०ए० एफ़०आर० एस० एल०, ने पुस्तक की भूमिका लिखकर पुस्तक का गौरव बढ़ाया है, एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

पितृतुल्य रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदासजी तथा गुरुवर डाक्टर बाबूरामजी सक्सेना को मैं उनकी पुस्तक पर सम्मतियों के लिए धन्यवाद देता हूँ। बाबूजी से मुझे इस सम्बन्ध में विशेष प्रोत्साहन मिला है। अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीयुत योगेश्वर गुलेरी को कहानियों के संकलन तथा सम्पादन में सहायता के लिए तथा अपने मित्र काशीनाथ मुकर्जी को पुस्तक के मुखपृष्ठ के लिए गुलेरीजी का रेखाचित्र बनाने के लिए धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ

विनीत

शक्तिधर गुलेरी

गुलेरीजी की अमर कहानियाँ

सुखमय जीवन ।

(प्रजामित्र १९११)

(१)

परीक्षा देने के पीछे और उसके फल निकलने के पहले के दिन किस बुरी तरह बीतते हैं, यह उन्हीं को मालूम है जिन्हें उन्हें गिनने का अनुभव हुआ है। सुबह उठते ही परीक्षा से आज तक कितने दिन गये, यह गिनते हैं, और फिर "कहावती आठ हफ्ते" में कितने दिन घटते हैं, यह गिनते हैं। कभी कभी उन आठ हफ्तों पर कितने दिन चढ़ गये यह भी गिनाना पड़ता है। खाने बैठे हैं और डाकिये की पैर की आहट आयी—कलेजा मुँह को आया। मुहल्ले में तार का चपरासी आया कि हाथ-पाँव काँपने लगे। न जागते चैन न सोते :—सुपने में भी यह दिखता है कि परीक्षक साहब एक आठ हफ़्ते की लम्बी छुरी लेकर छाती पर बैठे हुए हैं।

मेरा भी बुरा हाल था। एल० एल० बी० का फल अब के और भी देर से निकलने को था—न मालूम क्या हो गया था, या तो कोई परीक्षक मर गया था या उसको प्लेग हो गया था। उसके पर्चे किसी दूसरे के पास भेजे जाने को थे। बार-बार यही सोचता था कि प्रश्नपत्रों की जाँच किये पीछे सारे परीक्षकों और रजिस्ट्रारों को भले ही प्लेग हो जाय, अभी तो दो हफ़्ते माफ़ करे। नहीं तो परीक्षा के पहले ही उन सब को प्लेग क्यों न हो गया? रात

भर नींद नहीं आयी थी, सिर घूम रहा था ; अख़बार पढ़ने बैठा कि देखता क्या हूँ लिनोटाइप की मैशीन ने चार-पाँच पंक्ति उल्टी छाप दी हैं। बस अब नहीं सहा गया—सोचा कि घर से निकल चलो ; बाहर हो कुछ जी बहलेगा। लोहे का घोड़ा उठाया कि चल दिये।

तीन-चार मील आने पर शान्ति मिली। हरे हरे खेतों की हवा, कहीं पर चिड़ियों की चहचह और कहीं पर कुओं पर खेतों को सींचते हुए किसानों का सुरीला गाना, कहीं देवदार के पत्तों की सोंधी बास और कहीं उनमें हवा का सीं-सीं करके बजना—सबने मेरे चित्त को परीक्षा के भूत की सवारी से हटा लिया। बाइसिकिल भी गज़ब की चीज़ है। न दाना माने न पानी, चलाये जाइए जहाँ तक पैरों में दम हो। सड़क में कोई था ही नहीं, कहीं कहीं किसानों के लड़के और गाँव के कुत्ते पीछे लग जाते थे। मैंने बाइसिकिल को और भी हवा कर दिया। सोचा कि मेरे घर सितारपुर से पन्द्रह मील पर कालानगर है—वहाँ की मलाई की बरफ़ अच्छी होती है और वहीं मेरे एक मित्र रहते हैं; वे कुछ सनकी हैं। कहते हैं कि जिसे पहले देख लेंगे उससे विवाह करेंगे। उनसे कोई विवाह की चर्चा करता है तो अपने सिद्धान्त के मण्डन का व्याख्यान देने लग जाते हैं। चलो उन्हीं से सिर ख़ाली करें।

ख़याल पर ख़याल बँधने लगा। उसके विवाह का इतिहास याद आया। उनके पिता कहते थे कि सेठ गनेशलाल की एकलौती बेटी से अब की छुट्टियों में तुम्हारा ब्याह कर देंगे। पड़ोसी कहते थे कि सेठजी की लड़की कानी और मोटी है और आठ ही वर्ष की है। पिता कहते थे कि लोग जलकर ऐसी बातें उड़ाते हैं; और लड़की वैसी हो भी तो क्या, सेठजी के कोई लड़का है नहीं; बीस-तीस हज़ार का गहना देंगे। मित्र महाशय मेरे साथ साथ पहले डिबेटिंग क्लबों में बालविवाह और माता-पिता की ज़बरदस्ती पर तने व्याख्यान झाड़ चुके थे कि अब मारे लज्जा के साथियों में मुँह नहीं दिखाते थे। क्योंकि पिताजी के सामने चीं करने की हिम्मत नहीं थी। व्यक्तिगत विचार से साधारण विचार उठने लगे। हिन्दू समाज ही इतना सड़ा हुआ है कि हमारे उच्च विचार कुछ चल नहीं सकते। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। हमारे सद् विचार एक तरह के पशु हैं, जिनकी बलि माता-पिता की ज़िद

और हठ की बेदी पर चढ़ाई जाती है।...भारत का उद्धार तब तक नहीं हो सकता।

फिस्स्स्! एकदम अर्श से फर्श पर गिर पड़े। बाइसिकिल की फूँक निकल गयी। कभी गाड़ी नाव पर, कभी नाव गाड़ी पर। पम्प साथ नहीं था और नीचे देखा तो जान पड़ा कि गाँव के लड़कों ने सड़क पर ही काँटे की बाड़ लगायी है। उन्हें भी गालियाँ दीं, पर उससे तो पंकचर सुधरा नहीं। कहाँ तो भारत का उद्धार हो रहा था और कहाँ अब कालानगर तक इस चरखे को खैंच ले जाने की आपत्ति से कोई निस्तार नहीं दिखता। पास के मील के पत्थर पर देखा कि कालानगर यहाँ से सात मील है। दूसरे पत्थर के आते आते मैं हो लिया था। धूप जेठ की और कंकरीली सड़क, लदी हुई बैलगाड़ियों की मार से छः छः इञ्च शक्कर की सी बारीक पिसी हुई सफ़ेद मिट्टी बिछी हुई! काले पेटेण्ट लेदर के जूतों पर एक इञ्च सफ़ेद पालिश चढ़ गयी। लाल मुँह को पोंछते पोंछते रूमाल भीग गया और मेरा सारा आकार सभ्य विद्वान् का सा नहीं वरन सड़क कूटनेवाले मज़दूर का सा हो गया। सवारियों के हम लोग इतने गुलाम हो गये हैं कि दो-तीन मील चलते ही छठी का दूध याद आने लगता है!

(२)

"बाबूजी क्या बाईसिकल में पङ्कचर हो गया है?"

एक तो चश्मा, उस पर रेत की तह जमी हुई, उस पर ललाट से टपकते हुए पसीने की बूँदें, गर्मी की चिढ़ और काली रात की-सी लम्बी सड़क—मैंने देखा नहीं था कि दोनों ओर क्या है। यह शब्द सुनते ही सिर उठाया तो देखा कि एक सोलह-सत्रह वर्ष की कन्या सड़क के किनारे खड़ी है।

"हाँ, हवा निकल गयी है और पङ्कचर भी हो गया है। पम्प मेरे पास है नहीं। कालानगर कुछ बहुत दूर तो है ही नहीं—अभी जा पहुँचता हूँ॥

अन्त का वाक्य मैं सिर्फ़ ऐंठ दिखाने के लिए कहा था। मेरा जी जानता था कि पाँच मील पाँच सौ मील कैसे दिख रहे थे।

"इस सूरत से तो आप कालानगर क्या कलकत्ते पहुँच जायेंगे। ज़रा भीतर चलिए, कुछ जल पीजिए। आपकी जीभ सूखकर तालू से चिपट गयी

होगी। चाचाजी की बाइसिकल में पम्प है और हमारा नौकर गोविन्द पङ्कचर सुधारना भी जानता है।"

"नहीं, नहीं—"

"नहीं, नहीं क्या, हाँ, हाँ।"

यों कहकर बालिका ने मेरे हाथ से बाइसिकल ली और सड़क से एक तरफ़ हो ली। मैं भी उनके पीछे चला। देखा कि एक कटीली बाड़ से घिरा बगीचा है जिसमें एक बँगला है। यहीं पर कोई 'चाचाजी' रहते होंगे, परन्तु यह बालिका कैसी—

मैंने चश्मा रुमाल से पोंछा और उसका मुँह देखा। पारसी चाल की एक गुलाबी साड़ी के नीचे काले बालों से घिरा हुआ उसका मुखमण्डल दमकता था और उसकी आँखें मेरी ओर कुछ दया, हँसी और कुछ विस्मय से देख रही थीं,। बस, पाठक! ऐसी आँखें मैंने कभी नहीं देखी थीं। मानो वे मेरे कलेजे को घोलकर पी गयीं। एक अद्भुत कोमल शान्त ज्योति उनमें से निकल रही थी। कभी एक तीर में मारा जाना सुना है? कभी एक निगाह में हृदय वेचना पड़ा है? कभी तारामैत्रक और चक्षुर्मैत्री नाम आये हैं? मैंने एक सेकण्ड में सोचा और निश्चय कर लिया कि ऐसी सुन्दर आँखें त्रिलोकी में न होंगी और यदि किसी स्त्री की आँखों को प्रेम-बुद्धि से कभी देखूँगा तो इन्हीं को।

"आप सितारपुर से आये हैं। आप का नाम क्या है?"

"मैं जयदेवशरण वर्म्मा हूँ। आपके चाचाजी—"

"ओ हो, बाबू जयदेवशरण वर्मा बी० ए० जिन्होंने 'सुखमय-जीवन' लिखा है! मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आपके दर्शन हुए! मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी है और चाचाजी तो उसकी प्रशंसा बिना किये ;एक भी नहीं जाने देते। वे आप से मिलकर बहुत प्रसन्न होंगे, वे बिना भोजन किये आप को न जाने देंगे और आप के ग्रन्थ के पढ़ने से हमारा परिवार-सुख कितना बढ़ा है, इस पर कम से कम दो घण्टे तक व्याख्यान देंगे।"

स्त्री के सामने उसके नैहर की बड़ाई कर दे और लेखक के सामने उसके ग्रन्थ की। यह प्रिय बनने का अमोघ मन्त्र है। जिस साल मैंने बी० ए०

पास किया था, उस साल कुछ दिन लिखने की धुन उठी थी। ला कालेज के फ़र्स्ट इयर में सेकशन और कोड की पर्वाह न करके एक 'सुखमय-जीवन' नामक पोथी लिख चुका था। मम लोकों ने आड़े हाथों लिया था और वर्ष भर में सत्रह प्रतियाँ बिकी थीं। आज मेरी कदर हुई कि कोई उसका सराहनेवाला तो मिला!

इतने में हम लोग बरामदे में पहुँचे जहाँ पर कनटोप पहने पंजाबी ढंग की दाढ़ी रखे एक अधेड़ महाशय कुर्सी पर बैठ पुस्तक पढ़ रहे थे। बलिका बोली—

"चाचाजी, आज आपके बाबू जयदेवशरण वर्मा बी० ए० को साथ लाई हूँ। इनकी बाइसिकिल बेकाम हो गयी है। अपने प्रिय ग्रन्थकार से मिलाने के लिए कमला को धन्यवाद मत दीजिए, दीजिए उनके पम्प भूल आने को!"

वृद्ध ने जल्दी ही चश्मा उतारा और दोनों हाथ बढ़ाकर मुझसे मिलने के लिए पैर बढ़ाये।

"कमला, ज़रा अपनी माता को तो बुला ला। आइए, बाबू साहब, आइए। मुझे आपसे मिलने की बड़ी उत्कण्ठा थी। मैं गुलाबराय वर्मा हूँ। पहले कमसेरियट में हेड क्लर्क था। अब पेनशन लेकर इस एकान्त स्थान में रहता हूँ। दो गौ रखता हूँ और कमला तथा उसके भाई प्रबोध को पढ़ाता हूँ। मैं ब्रह्मसमाजी हूँ; मेरे यहाँ परदा नहीं है। कमला ने हिन्दी मिडिल पास कर लिया है। हमारा समय शास्त्रों के पढ़ने में बीतता है। मेरी धर्मपत्नी भोजन बनाती है और कपड़े सी लेती है; मैं उपनिषद् और योगवासिष्ठ का तर्जुमा पढ़ा करता हूँ। स्कूल में लड़के बिगड़ जाते हैं, प्रबोध को इसी लिए घर पर पढ़ाता हूँ।"

इतना परिचय दे चुकने पर वृद्ध ने श्वास लिया। मुझे भी इतना ज्ञान हुआ कि कमला के पिता मेरी जाति के ही हैं। जो कुछ उन्होंने और कहा था, उसकी ओर मेरे कान नहीं थे—मेरे कान उधर थे, जिधर से माता को लेकर कमला आ रही थी।

"आपका ग्रन्थ बड़ा ही अपूर्व है। दाम्पत्यसुख चाहनेवालों के लिए लाख रुपये से भी अनमोल है। धन्य है आपको! स्त्री को कैसे प्रसन्न रखना,

घर में कलह कैसे नहीं होने देना, बालबच्चों को क्योंकर सच्चरित्र बनाना, इन सब बातों में आपके उपदेश पर चलनेवाला पृथ्वी पर ही स्वर्गसुख भोग सकता है। पहले कमला की मा के और मेरे कभी-कभी खटपट हो जाया करती थी। उसके ख़्याल अभी पुराने ढंग के हैं। पर जब से मैं रोज़ भोजन के पीछे उसे आध घण्टे तक आपकी पुस्तक का पाठ सुनाने लगा हूँ, तब से हमारा जीवन हिण्डौले की तरह झूलते-झूलते बीतता है।"

मुझे कमला की मा पर दया आयी, जिसको वह कूड़ा-करकट रोज़ सुनना कुढ़ता होगा। मैंने सोचा हिन्दी के पत्र-सम्पादकों में यह बूढ़ा क्यों न हुआ! यदि होता तो आज मेरी तूती बोलने लगती!

"आपको गृहस्थ-जीवन का कितना अनुभव है! आप सब कुछ जानते हैं! भला इतना ज्ञान कभी पुस्तकों से मिलता है? कमला की मा कहा करती थी कि आप केवल किताबों के कीड़े हैं, सुनी-सुनायी बातें लिख रहे हैं। मैं बार-बार यह कहता था कि इस पुस्तक के लिखनेवाले को परिवार का खूब अनुभव है। धन्य है, आपकी सहधर्मिणी! आपका और उसका जीवन कितने सुख से बीतता होगा! और जिन बालकों के आप पिता हैं, वे कैसे बड़भागी हैं कि सदा आपकी शिक्षा में रहते हैं; आप जैसे पिता का उदाहरण देखते हैं।"

कहावत है कि वेश्या अपनी अवस्था कम दिखाना चाहती है और साधु अपनी अवस्था अधिक दिखाना चाहता है। भला ग्रन्थकार का पद इन दोनों में किसके समान है? मेरे मन में आयी कि कह दूँ कि अभी मेरा पच्चीसवाँ वर्ष चल रहा है, कहाँ का अनुभव और कहाँ का परिवार—फिर सोचा ऐसा कहने से ही मैं वृद्ध महाशय की निगाहों से उतर जाऊँगा और कमला की मा सच्ची हो जायगी कि बिना अनुभव के छोकरे ने गृहस्थ के कर्तव्य धर्म पर पुस्तक लिख मारी है। यह सोचकर मैं मुस्करा दिया और ऐसी तरह मुँह बनाने लगा कि वृद्ध ने समझा कि अवश्य मैं संसार-समुद्र में गोते मार-मारकर नहाया हुआ हूँ।

(३)

वृद्ध ने उस दिन मुझे जाने नहीं दिया। कमला की माता ने प्रीति के

साथ भोजन कराया और कमला ने पान लाकर दिया। न मुझे अब कालानगर की मलाई की बरफ़ याद रही और न सनकी मित्र की। चाचाजी की बातों में भी सैकड़े सत्तर तो मेरी पुस्तक और उसके रामबाण लाभों की प्रशंसा थी, जिसको सुनते-सुनते मेरे कान दुख गये। फ़ी सैकड़ा पच्चीस वह मेरी प्रशंसा और मेरे पति-जीवन और पितृ-जीवन की महिमा गा रहे थे। काम की बात बीसवाँ हिस्सा थी, जिसमें मालूम पड़ा कि अभी कमला का विवाह नहीं हुआ है, उसे अपनी फूलों की क्यारी को सम्हालने का बड़ा प्रेम है, वह 'सखी' के नाम से "महिला मनोहर" मासिक पत्र में लेख भी दिया करती है।

सायंकाल को मैं बगीचे में टहलने निकला। देखता क्या हूँ कि एक कोने में केले के झाड़ों के नीचे मोतिये और रजनीगन्धा की क्यारियाँ हैं और कमला उसमें पानी दे रही है। मैंने सोचा कि यही समय है। आज मरना है या जीना है। उसको देखते ही मेरे हृदय में प्रेम की अग्नि जल उठी थी और दिन भर वहाँ रहने से वह धधकने लग गयी थी। दो ही पहर में मैं बालक से युवा हो गया था। अँगरेजी महाकाव्यों में, प्रेममय उपन्यासों में और कोर्स के संस्कृत नाटकों में जहाँ-जहाँ प्रेमिक का वार्त्तालाप पढ़ा था, वहाँ-का दृश्य स्मरण करके वहाँ-वहाँ के वाक्यों को घोख रहा था, पर यह निश्चय नहीं कर सका कि इतने थोड़े परिचय पर भी बात कैसे करनी चाहिए। अन्त को अंगरेज़ी पढ़नेवाले की धृष्टता ने आर्यकुमार की शालीना पर विजय पायी और चपलता कहिए, ढीठपन कहिए, पागलपन कहिए, मैंने दौड़कर कमला का हाथ पकड़ लिया। उसके चेहरे पर सुर्खी दौड़ गई और डोलची उसके हाथ से गिर पड़ी। मैं उसके कान में कहने लगा।

"आपसे एक बात कहनी है।"

"क्या? यहाँ कहने की कौन सी बात है?"

"जब से आपको देखा है तब से—"

"बस चुप करो। ऐसी धृष्टता!"

अब मेरा वचन-प्रवाह उमड़ चुका था। मैं स्वयं नहीं जानता था कि मैं क्या कह रहा हूँ। पर लगा बकने "प्यारी कमला, तुम मुझे प्राणों से

बढ़कर हो ; प्यारी कमला मुझे अपना अमर बनने दो । मेरा जीवन तुम्हारे बिना मरुस्थल है, उसमें मन्दाकिनी बनकर बहो ! मेरे जलते हुए हृदय में अमृत की पट्टी बन जाओ । जब से तुम्हें देखा है, मेरा मन मेरे अधीन नहीं है । मैं तब तक शान्ति न पाऊँगा जब तक तुम—"

कमला जोर से चीख उठी और बोली 'आपको ऐसी बातें कहते लज्जा नहीं आती ? धिक्कार है आपकी शिक्षा को और धिक्कार है आपकी विद्या को ! इसी को आपने सभ्यता मान रखा है कि अपरचित कुमारी से एकान्त ढूँढ़कर ऐसा घृणित प्रस्ताव करें ! तुम्हारा यह साहस कैसे हो गया ? तुमने मुझे क्या समझ रखा है ? सुखमयजीवन का लेखक और ऐसा घृणित चरित्र ! चिल्लू भर पानी में डूब मरो । अपना काला मुँह मुझे मत दिखलाओ । अभी चाचाजी को बुलाती हूँ ।"

मैं सुनता जा रहा था । क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ? यह अग्निवर्षा मेरे किस अपराध पर ? तो भी मैंने हाथ नहीं छोड़ा । कहने लगा "सुनो कमला, यदि तुम्हारी कृपा हो जाय तो सुखमय जीवन—"

"देखा तेरा सुखमय जीवन ! आस्तीन के साँप ! पापात्मा !! मैंने साहित्यसेवी जानकर और ऐसे उच्च विचारों का लेखक समझकर तुझे अपने घर में घुसने दिया और तेरा विश्वास और सत्कार किया था। प्रच्छन्न-पापिन्[1] ! वकदाम्भिक[2] ? विड़ालव्रतिक[3] ! मैंने तेरी सारी बातें सुन ली हैं ।,' चाचाजी आकर लाल लाल आँखें दिखाते हुए क्रोध से काँपते हुए कहने लगे "शैतान, तुझे यहाँ आकर माया-जाल फैलाने का स्थान मिला । ओफ़ ! मैं तेरी पुस्तक से छला गया । पवित्र जीवन की प्रशंसा में फ़ार्मों के फ़ार्म काले करनेवाले ! तेरा ऐसा हृदय ! कपटी ! विष के घड़े—"

उनका धाराप्रवाह बन्द ही नहीं होता पर कमला की गालियाँ और थीं ओर चाचाजी की और । मैंने भी गुस्से में आकर कहा "बाबू साहब, जबान सम्हालकर बोलिए । आपने अपनी कन्या को शिक्षा दी है और सभ्यता सिखायी है, मैंने भी शिक्षा पायी है और कुछ सभ्यता सीखी है ।

---

१. जिसके पाप ढके हुए हों । २. बगुले की तरह छल करनेवाला । ३. बिल्ली की की तरह व्रत रखनेवाला ।

आप धर्म्म-सुधारक हैं। यदि मैं उसके गुणों और रूप पर आसक्त हो गया तो अपना पवित्र प्रणय उसे क्यों न जनाऊं ? पुराने ढर्रे के पिता दुराग्राही होते सुने गये हैं। आपने क्यों सुधार का नाम लजाया है।"

'तुम सुधार का नाम मत लो। तुम तो पापी हो। सुखमय जीवन के कर्त्ता होकर—"

"भाड़ में जाय सुखमय-जीवन ! इसी के मारे नाकों दम है !! सुखमय-जीवन के कर्त्ता ने क्या यह शपथ खा ली है कि जनम भर क्वारा ही रहे ? क्या उसके प्रेमभाव नहीं हो सकता ? क्या उसमें हृदय नहीं होता ?"

"हैं जनम भर क्वारा ?"

'हैं काहे की ? मैं तो आपकी पुत्री से निवेदन कर रहा था कि जैसे इसने मेरा हृदय हर लिया है, वैसे यदि अपना हाथ मुझे दे तो उसके साथ 'सुखमय-जीवन के' उन आदर्शों जो प्रत्यक्ष अनुभव करूँ जो अभी तक मेरी कल्पना में हैं ! पीछे हम दोनों आपकी आज्ञा माँगने आते। आप तो पहले ही दुर्वासा बन गये !"

"तो क्या आपका विवाह नहीं हुआ। आपकी पुस्तक से तो जान पड़ता है कि आप कई वर्षों से गृहस्थ-जीवन का अनुभव रखते हैं। तो कमला की माता ही सच्ची थी।"

इतनी बातें हुई थीं, पर न मालूम क्यों मैंने कमला का हाथ नहीं छोड़ा था। इतनी गम के साथ शास्त्रार्थ हो चुका था, परन्तु वह हाथ जो क्रोध के कारण लाल हो गया था, मेरे हाथ में ही पकड़ा हुआ था। अब उसमें सात्विक भाव का पसीना आ गया था और कमला ने लज्जा से आँखें नीची कर ली थीं विवाह के पीछे कमला कहा करती है कि न मालूम विधाता की किस कला से उस समय मैंने तुम्हें झटककर अपना हाथ नहीं खेंच लिया। मैंने कमला के दोनों हाथ खेंचकर अपने हाथों के सम्पुट में ले लिये (और उससे उन्हें हटाया नहीं !) और इस तरह चारो हाथ जोड़कर वृद्ध से कहा:—

"चाचाजी, उस निकम्मी पोथी का नाम मत लीजिए। बेशक कमला की माँ सच्ची है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक पहचान सकती हैं कि कौन

अनुभव की बातें कर रहा है और कौन गप्पें हाँक रहा है। आपकी आज्ञा हो तो कमला और मैं दोनों सच्चे सुखमय जीवन का आरम्भ करें। दस वर्ष पीछे मैं जो पोथी लिखूँगा, उसमें किताबी बातें न होंगी, केवल अनुभव की बातें होंगी।'

वृद्ध ने जेब से रुमाल निकालकर चश्मा पोंछा और अपनी आँखें पोंछीं। आँखों पर कमला की माता का विजय होने के क्षोभ के आँसू थे या घर बैठे पुत्री को योग्य पात्र मिलने के हर्ष के आँसू, राम जाने।

उन्होंने मुसकराकर कमला से कहा—'दोनों मेरे पीछे-पीछे चले आओ। कमला! तेरी मा ही सच कहती थी।' वृद्ध बँगले की ओर चलने लगे। उनकी पीठ फिरते ही कमला ने आँखें मूँदकर मेरे कन्धे पर सिर रख दिया।

बुद्धू का काँटा

(१९११—१५)

(१)

रघुनाथ प्रप्रसादातत् त्रिवेदी—या रुग्नात् पर्शाद् तिर्वेदी,—

यह क्या ?

क्या करें, दुविधा में जान है। एक ओर तो हिन्दी का यह गौरव-पूर्ण दावा है कि, इसमें जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाता है और जैसा लिखा जाता है वैसा ही बोला जाता है। दूसरी ओर हिन्दी के कर्णधारों का अविगति शिष्टाचार है कि जैसे धर्मोपदेशक कहते हैं कि हमारे कहने पर चलो, हमारी करनी पर मत चलो, वैसे ही जैसे हिन्दी के आचार्य लिखें वैसे लिखो, जैसे वे बोलें वैसे मत लिखो, शिष्टाचार भी वैसा ? हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति अपने व्याकरणकर्षायित कण्ठ से कहें 'पर्सोत्तमदास' और 'हर्किसन्लाल' और उनके पिट्टू छापें ऐसी तरह कि पढ़ा जाय—'पुरुषोत्तम अ दास अ' और हरिकृष्णलाल अ'

अजी जाने भी दो, बड़े-बड़े बह गये और गधा कहे कितना पानी ! कहानी कहने चले हो, या दिल के फफोले फोड़ने ?

अच्छा जो हुकुम। हम लालाजी के नौकर हैं, बैगनों के थोड़े ही हैं। रघुनाथ प्रसाद त्रिवेदी अब के इन्टरमीजिएट परीक्षा में बैठा है। उसके पिता दारसूरी के पहाड़ के रहनेवाले और आगरे के बुफातिया बेंक के मैनेजर हैं। बैंक के दफ़्तर के पीछे चौक में उनका तथा उनकी स्त्री का बारहमासिया मकान है। बाबू बड़े सीधे, अपने सिद्धान्तों के पक्के और खरे आदमी हैं जैसे पुराने ढंग के होते हैं। बैंक के स्वामी इन पर इतना भरोसा करते हैं कि कभी छुट्टी नहीं देते और बाबू काम के इतने पक्के हैं कि छुट्टी माँगते नहीं। न बाबू वैसे कट्टर सनातनी हैं कि बिना मुँह धोये ही तिलक लगाकर स्टेशन

पर दर्भङ्गा महाराज के स्वागत को जायँ, न ऐसे समाजी ही हैं कि खंजड़ी लेकर 'तोड़ पोप गढ़ लंका का' करने दौड़ें। उसूलों के पक्के हैं।

हाँ, उसूलों के पक्के हैं। सुबह एक प्याला चाय पीते हैं तो ऐसा कि जेठ में भी नहीं छोड़ते और माघ में भी एक के दो नहीं करते। उर्द की दाल खाते हैं, क्या मजाल है कि बुखार में भी मूँग की दाल का एक दाना खा जाँय। आजकल के एम० ए०, बी० ए० पासवालों को हँसते हैं कि, शेक्सपीयर और बेकन चाट जाने पर भी वे दफ़्तर के काम की अँगरेज़ी चिट्ठी नहीं लिख सकते। अपने जमाने के साथियों को सराहते हैं जो शेक्सपीयर के दो-तीन नाटक न पढ़कर सारे नाटक पढ़ते थे, डिक्शनरी से अँगरेज़ी शब्दों के लैटिन धातु याद करते थे। अपने गुरु बाबू प्रकाशबिहारी मुकर्जी की प्रशंसा रोज़ करते थे कि, इन्होंने 'लायब्रेरी इम्तहान' पास किया था। ऐसा कोई दिन ही बीतता होगा (निगोशिएबल इन्सट्रूमेन्ट एक्ट के अनुसार होनेवाली तातीलों को मत गिनिए) कि, जब उनके 'लायब्रेरी इम्तहान' का उपाख्यान नये बी० ए० हेडक्लर्क को उसके मन और बुद्धि की उन्नति के लिए उपदेश की तरह नहीं सुनाया जाता हो। लाट साहब ने मुकर्जी बाबू को बंगाल-लायब्रेरी में जाकर खड़ा कर दिया। राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में बलि के खूँटे में बँधे हुए शुनःशेप की तरह बाबू आलमारियों की ओर देखने लगे। लाट साहब मन चाहे जैसी आलमारियों से मन चाहे जैसी किताब निकालकर मन चाहे जहाँ से पूछने लगे। सब आलमारियाँ खुल गयीं, सब किताबें चुक गयीं, लाट साहब की बाँह दुख गयी, पर बाबू कहते-कहते नहीं थके, लाट साहब ने अपने हाथ से बाबू को एक घड़ी दी और कहा कि, मैं अँगरेज़ी विद्या का छिलका ही भर जानता हूँ, तुम इसकी गिरी खा चुके हो। यह कथा पुराण की तरह रोज़ कही जाती थी।

इन उसूल-धन बाबूजी का एक उसूल यह भी था कि लड़के का विवाह छोटी उमर में नहीं करेंगे। इनकी जाति में पाँच-पाँच वर्ष की कन्याओं के पिता लड़केवालों के लिए वैसे मुँह बाये रहते हैं जैसे पुष्कर की झील में मगरमच्छ नहानेवालों के लिए ; और वे कभी-कभी दरवाज़े पर धरना देकर आ बैठते थे कि, हमारी लड़की लीजिए नहीं तो हम आपके द्वार पर प्राण

दे देंगे। उसूलों के पक्के बाबूजी इनके भय से देश नहीं जाते थे और वे कन्या-पितारूपी मगरमच्छ अपनी पहाड़ी गोह को छोड़कर आगरे आकर बाबूजी की निद्रा का भंग करते थे। रघुनाथ की माता को सास बनने का बड़ा चाव था। जहाँ वह कुछ कहना आरम्भ करती कि, बाबूजी बैंक की लेजरबुक खोलकर बैठ जाते, या लकड़ी उठाकर घूमने चल देते। बहस करके स्त्रियों से आज तक कोई नहीं जीता पर मष्ट मारकर जीत सकता है।

बाबू के पड़ोस में एक विवाह हुआ था। उस घर की मालकिन लाहना बाँटती हुई रघुनाथ की मा के पास आयी। रघुनाथ की मा ने नयी बहू को आसीस दी और स्वयं मिठाई रखने, तथा बहू की गोद में भरने के लिए कुछ मेवा लाने भीतर गयी। इधर मुहल्ले की वृद्धा ने कहा पन्द्रह बरस हो गये लाहना लेते-लेते। आज तक एक बतासा भी इनके यहाँ से नहीं मिला।' दूसरी वृद्धा, जो तीन बड़ी और दो छोटी पतोहू की सेवा से इतनी सुखी थी कि रोज मृत्यु को बुलाया करती थी, बोली 'बड़े भागों से बेटों का ब्याह होता है।'

तीसरी ने नाक की फुलनी हिलाकर कहा 'अपना खाने पहरने का कोई लोभ छोड़े तब तो बेटे की बहू लावे। बहू के आते ही खाने-पहनने में कमी जो हो जाती है!' चौथी ने कहा 'ऐसे कमाने-खाने में आग लगे। यों तो कुत्ते भी अपना पेट भर लेते हैं। कमाई सुफल करने का यही तो मौका होता है।' इसके पति ने अपने चारों बेटों के विवाह में मकान और जमीन गिरवी रख दिये थे और कम से कम अपने जीवन भर के लिए कंगाली का कम्बल ओढ़ लिया था।

अवश्य ही ये सब बातें रघुनाथ की माँ को सुनाने के लिए कही गयी थीं। रघुनाथ की माँ भी जानती थी कि ये मुझे सुनाने को कही जा रही हैं। परन्तु उसके आते ही मुहल्ले की एक और ही स्त्री की निन्दा चल पड़ी और रघुनाथ की माँ, यह जानकर भी कि, उस स्त्री के पास जाते ही मेरी भी ऐसी निन्दा की जायगी, हँसते-हँसते उनकी बातों में सम्मति देने लग गयी। पतोहुओं से सुखिनी बुढ़िया ने एक हलके से अनुदात्त से कहा 'अब तुम रघुनाथ का ब्याह इस साल तो करोगी?' 'उसके चाचा जानें, गहने तो बनवा रहे हैं'—रघुनाथ की माँ ने भी वैसे ही हलके उदात्त से उत्तर दिया। उनके

अनुदात्त को यह समझ गयी, और इसके उदात्त को वे सब। स्वर का विचार हिन्दुस्थान के मर्दों की भाषा में भले ही न रहा हो, स्त्रियों की भाषा में उससे अब भी कई अर्थ प्रकाश किये जाते हैं।

"मैं तुम्हें सलाह देती हूं कि जल्दी रघुनाथ के ब्याह कर लो। कलजुग के दिन हैं, लड़का बोर्डिंग में रहता है, बिगड़ जायगा। आगे तुम्हारी मर्जी, क्यों बहन सच है न ? तू क्यों नहीं बोलती ?"

"मैं क्या कहूं, मेरे रघुनाथ का-सा बेटा होता तो आज तक पोता खिलाती" यों और दो-चार बातें करके यह स्त्रीदल चला गया और गृहिणी के हृदयसमुद्र को कई विचारों की लहरों से झलकता हुआ छोड़ गया।

सायंकाल भोजन करते समय बाबू बोले "इन गर्मियों में रघुनाथ का ब्याह कर देंगे।"

स्त्री ने पहले ही लेजर और छड़ी छिपाकर ठान ली थी कि आज बाबूजी को दबाऊँगी कि पड़ोसियों की बोलियाँ नहीं सही जाती। अचानक रंग पहले चढ़ गया। पूछने लगी "हैं, आज यह कैसे सूझी ?"

"दारसूरी से भैया की चिट्ठी आई है। बहुत कुछ बातें लिखी हैं। कहा है कि तुम तो परदेशी हो गये। यहाँ चार महीने बाद बृहस्पति सिंहस्थ हो जायगा फिर डेढ़-दो वर्ष तक ब्याह नहीं होंगे। इसलिए छोटी-छोटी बच्चियों के ब्याह हो रहे हैं; बृहस्पति के सिंह के पेट में पहुँचने के पहले कोई चार-पाँच वर्ष की ही लड़की कुँवारी बचेगी। फिर जब बृहस्पति कहीं शेर की दाढ़ में से जीता-जागता निकल आया तो न बराबर का घर मिलेगा, न जोड़ की लड़की। तुम्हें क्या है, गाँव में बदनाम तो हम हो रहे हैं। मैंने अभी दो तीन घर रोक रखे हैं। तुम जानो, अब के मेरा कहना न मानोगे तो मैं तुमसे जन्मभर बोलने का नहीं।"

"भैया ठीक तो कहते हैं।"

"मैं भी मानता हूँ कि, अब लड़के को उन्नीसवाँ वर्ष है। अब के इण्टरमीजिएट पास हो ही जायगा। अब हमारी नहीं चलेगी, देवर-भौजाई जैसा नचायेंगे, वैसा ही नाचना पड़ेगा। अब तक मेरी चली, यही बहुत हुआ।"

"भैया की कहो, मेरा कहना तो पाँच वर्ष से जो मान रहे हो।"

"अच्छा अब जिद्दो मत। मैंने दो महीने की छुट्टी ली है। छुट्टी मिलते ही देश चलते हैं। बच्चा को लिख दिया है कि इम्तहान देकर सीधा घर चला आ। दस-पन्द्रह दिन में आ जायगा। तब तक हम घर भी ठीक कर लें और दिन भी। अब तुम आगरे बहू को लेकर आओगी।"

स्त्री ने सोचा, बताशेवाली बुढ़िया का उलाहना तो मिटेगा।

(२)

"बा' छा[1], मेरे हाल में आपका क्या जी लगेगा? गरीबों का क्या हाल? रब[2] रोटी देता है, दिन भर मेहनत करता हूँ, रात पड़ रहता हूँ। बा' छा, तुम जैसे साईं[3] लोगों की बरकत से मैं हज कर आया, ख्वाजा का उर्स देख आया, तीन बेले[4] नमाज पढ़ लेता हूँ, और मुझे क्या चाहिए! बाछा, मेरा काम टट्टू चलाना नहीं है। अब तो इस मोती की कमाई खाता हूँ, कभी सवारी जाता हूँ कभी लादा[5]; ढाई मण कणक[6] पा[7] लेता हूँ तो दो पौली[8] बच जाती है। रब की मरजी, मेरा अपना घर था; सिहों[9] के वक्त की माफ़ी जमीन थी, नाते[10] पड़ोसियों में मेरा नाम था। मैं धामपुर के नवाब का खाना बनाता था और मेरे घर में से उसके जनाने में पकाती थी। एक रात को मैं खाना बना खिला के अपनी मंजड़ी[11] पर सोया था कि, मेरे मौला[12] ने मुझे आवाज़ दी "लाही लाही, हज कर आ।" मैं आँखें मल के खड़ा हो गया, पर कुछ दिखा नहीं। फिर सोने लगा कि, फिर वही आवाज़ आयी कि "लाही, तू मेरी पुकार नहीं सुनता? जा हज कर आ।" मैं समझा, मेरा मौला मुझे बुलाता है। फिर आवाज़ आयी "लाहो, चल पड़; मैं तेरे नाल[13] हूँ, मैं तेरा बेड़ा पार करूँगा।" मुझसे रहा नहीं गया। मैंने अपना कम्बल उठाया और आधी रात को चल पड़ा। बा'छा, मैं रातों चला, दिनों चला, भीख माँगकर चलते-चलते बम्बई पहुँचा। वहाँ मेरे पल्ले टका नहीं था, पर एक हिन्दूबाई ने मुझे टिकट ले दिया। काफ़ले के साथ मैं जहाज़ पर चढ़ गया। वहाँ मुझे छः महीने लगे। पूरी हज की। जब लौटे

१ बादशाह २ ईश्वर ३ स्वामी (यहाँ भक्त) ४ वक्त ५ बोझा ६ गेहूँ ७ लाद लेता हूँ ८ चवन्नी ९ सिक्खों १० रिश्तेदार ११ खटिया १२ ईश्वर १३ साथ।

तो रास्ते में जहाज़ भटक गया। एक चट्टान पानी के नीचे थी, उसे टकरा गया। उसके पीछे की दोनों लालटेनें ऊपर आ गयीं और वे हमें शैतान की-सी आँखें दिखायी देने लगीं। सबने समझा मर जायेंगे, पानी में गोर[1] बनेगी। कप्तान ने छोटी किश्तियाँ खोलीं और उनमें हाजियों को बिठाकर छोड़ दिया। मर्द का बच्चा आप अपनी जगह से नहीं टला, जहाज़ के साथ डूब गया। अन्धेरे में कुछ सूझता नहीं था। सवेरा होते ही हमने देखा कि दो किश्तियाँ बह रही हैं और न जहाज़ है, न दूसरी किश्तियाँ। पता ही नहीं हम कहाँ से किधर जा रहे थे। लहरें हमारी किश्तियों को उछालती, नचाती, डुबोती, झकोड़ती थी। जो लहमा बीतता था, हम खैर मनाते थे। पर मेरे मालिक ने करम[2] किया, मेरे अल्लाह ने, मेरे मौला ने जैसे उस रात को कहा था, मेरा बेड़ा पार किया। तीन दिन तीन रात हम बेपते बहते रहे ;—चौथे दिन माल के एक जहाज़ ने हमको उठा लिया और छठे दिन कराची में हमने दुआ की नमाज़ पढ़ी। पीछे सुना कि तीन सौ हाजी मर गये।

वहाँ से मैं ख्वाजा की जियारात को चला, अजमेरशरीफ़ में दरगाह का दीदार पाया। इस तरह, बाँछा, साढ़े सात महीने पीछे मैं घर आया। आकर घर देखता क्या हूँ कि सब पटरा हो गया है। नवाब जब सवेरे उठा तो उसने नाश्ता माँगा। नौकरों ने कहा कि इलाही का पता नहीं। बस वह जल गया। उसने मेरा घर फुँकवा दिया, मेरी ज़मीन अपनी रखवाल[3] भाई को दे दी और मेरी बीबी को लौंडी बनाकर क़ैद कर लिया। मैं उसका क्या ले गया था? अपना कम्बल ले गया था और पिछले तीन महीने की तलब अपनी पेटी में उसके बावर्चीखाने में रख गया था। भला मेरा मौला बुलावे और मैं न जाऊँ। पर उसको जो एक घण्टा देर से खाना मिला, इससे बढ़-कर और गुनाह क्या होता?

इसके पन्द्रहवें दिन जमाने में एक सोने की अँगूठी खो गई। नवाब ने मेरी घरवाली पर शक़ किया। उससे पूछा तो वह बोली कि मेरा कौन-सा घर और घरवाला बैठा है कि उसके पास अँगूठी ले जाऊँगी। मैं तो यहीं रहती हूँ। सीधी बात थी, पर उससे सुनी नहीं गयी। जला-भुना तो था ही,

---

[1] कब्र। [2] कृपा। [3] रखेली।

बेंत लेकर लगा मारने। बा'छा, मैं क्या कहूँ, मौला मेरा गुनाह बख्शे, आज पाँच बरस हो गये हैं, पर जब मैं घरवाली की पीठ पर पचासों दाग़ों की गुच्छियाँ देखता हूँ तो यही पछतावा रहता है कि, मुझे उस सूर का (तोबा ! तोबा !) गला घोंटने को यहाँ क्यों न रखा। मारते-मारते जब मेरी घरवाली बेहोश हो गयी तब डरकर उसे गाँव के बाहर फिकवा दिया। तीसरे दिन वह वहाँ से घिसकती-घिसकती चलकर अपने भाई के यहाँ पहुँची।"

रघुनाथ ने रूँधे गले से कहा, "तुमने फरयाद नहीं की?"

"कचहरियाँ ग़रीबों के लिए नहीं हैं, बा' छा, वे तो सेठों के लिए हैं। ग़रीबों की फर्याद सुननेवाला सुनता है। उसने पन्द्रह दिन में सुनकर हुक्म भी दे दिया। मेरी औरत को मारते मारते उस पाजी के हाथ की अँगुली में एक बेंत की सली चुभ गयी थी। वही पक गयी लहू में ज़हर हो गया। पन्द्रहवें दिन मर गया, हज से आकर मैंने सारा हाल सुना। अपने जले हुए घर को देखा और अपने पड़दादे की सिहों की माफ़ी ज़मीन को भी देखा। चला आया। मसजिद में जाकर रोया। मेरे मौला ने मुझे हुकुम दिया, "लाही मैं तेरा नाल हूँ, अपनी जोरू को धीरज दे। मैं साले के यहाँ पहुँचा। उसने पचीस रुपये दिये: मैं टट्टू मोल लेकर पहाड़ चला आया और यहाँ रब का नाम लेता हूँ और आप जैसे साँई लोगों की बन्दगी करता हूँ। रब का नाम बड़ा है।"

रघुनाथ इम्तहान देकर रेल से घराठनी तक आया। वहाँ से तीस मील पहाड़ी रास्ता था। दूरी पर चूने के से ढेर चमकते दिखने लगे जो कभी न पिघलनेवाली बर्फ़ के पहाड़ थे। रास्ता साँप की तरह चक्कर खाता था। मालूम होता कि एक घाटी पूरी हो गई है, पर ज्यों ही मोड़ पर आते त्यों ही उसकी जड़ में एक और आधी मील का चक्कर निकल पड़ता। एक ओर ऊँचा पहाड़, दूसरी ओर ढाई सौ फुट गहरी खड्ढ। और किराये के टट्टुओं की लत कि सड़क के छोर पर चलें जिससे सवार की एक टाँग तो खड्ड पर ही लटकती रहे। आगे वैसा ही रास्ता वैसा ही खड्ड ; सामने वैसा ही कोने पर चलनेवाले टट्टू। जब धूप बढ़ी और जी न लगा तो मोती के स्वामी

इलाही से रघुनाथ ने उसका इतिहास पूछा ? उसने जो सीधी और विश्वास से भरी, दुःख की धाराओं से भीगी हुई कथा कही उससे कुछ मार्ग कट गया। कितने ग़रीबों का इतिहास ऐसी चित्र घटनाओं की धूप-छाया से भरा हुआ है ! पर हम लोग प्रकृति के इन सच्चे चित्रों को न देखकर उपन्यासों की मृगतृष्णा में चमत्कार ढूँढ़ते हैं !

धूप बढ़ गई थी कि वे एक ग्राम में पहुँचे। गाँव के बाहर सड़क के सहारे एक कुँआ था और उसी के पास एक पेड़ के नीचे इलाही ने स्वयं और अपने मोती के लिए विश्राम करने का प्रस्ताव किया। "घोड़े को न्हारी देकर और पानी-वानी पीकर धूप ढलते ही चला देंगे और बात की बात में आपको घर पहुँचा देंगे।" रघुनाथ को भी टाँगें सीधी करने में कोई उज्र न था। खाने की इच्छा बिलकुल न थी, हाँ, पानी की प्यास लग रही थी। रघुनाथ अपने बक्स में से लोटा-डोर निकालकर कुएँ की तरफ़ चला।

(३)

कुएँ पर देखा कि, छः सात स्त्रियाँ पानी भरने और भरकर ले जाने की कई दशाओं में हैं। गाँवों में परदा नहीं होता। वहाँ सब पुरुष सब स्त्रियों से और सब स्त्रियाँ सब पुरुषों से निडर होकर बात कर लेती हैं। और शहरों के लम्बे घूँघटों के नीचे जितना पाप होता है, उसका दसवाँ हिस्सा भी गाँवों में नहीं होता। इसी से तो कहावत में बाप ने बेटी को उपदेश दिया है कि, लम्बे घूँघटवाली से बचना। अनजान पुरुष किसी भी स्त्री से 'बहन' कहकर बात कर लेता है और स्त्री बाज़ार से जाकर किसी भी पुरुष से 'भाई' कहकर बोल लेती है। यही वाचिक संधि दिन भर के व्यवहारों में 'पासपोर्ट' का काम दे देती है। हँसी ठट्ठा भी होता है पर कोई दुर्भाव नहीं खड़ा होता। राजपूताने के गाँवों में स्त्री ऊँट पर बैठी निकल जाती है और खेतों के लोग "मामीजी, मामीजी" चिल्लाया करते हैं। न उनका अर्थ उस शब्द से बढ़कर कुछ होता है और न वह चिढ़ती हैं। एक गाँव में बरात जीमने बैठी। उस समय स्त्रियाँ समधियों को गाली गाती हैं। वहाँ पर गालियाँ न गायी जाती देख नागरिक सुधारक बराती को बड़ा हर्ष हुआ। वह ग्राम के एक वृद्ध से कह बैठा "बड़ी खुशी की बात है कि, आपके यहाँ इतनी तरक्की हो गयी है।"

बुड्ढा बोला "हाँ साहब, तरक्की हो रही है। पहले गालियों में कहा जाता था फ़लाने की फलानी फ़लाने के साथ और अमुक की अमुक अमुक के साथ। लोग-लुगाई सुनते थे, हँस देते थे। अब घर-घर में वे ही बातें सच्ची हो रही हैं। अब गालियाँ गायी जाती हैं तो चोरों की दाढ़ी में तिनके निकलते हैं। तभी तो आन्दोलन होते हैं कि गालियाँ बन्द करो क्योंकि वे चुभती हैं।"

रघुनाथ यदि चाहता तो किसी भी पानी भरनेवाली से पीने को पानी माँग लेता। परन्तु उसने अब तक अपनी माता को छोड़कर किसी स्त्री से कभी बात नहीं की थी। स्त्रियों के सामने बात करने को उसका मुँह खुल न सका। पिता की कठोर शिक्षा से बालकपन से ही उसे वह स्वभाव पड़ गया था कि, दो वर्ष प्रयाग में स्वतन्त्र रहकर भी वह अपने चरित्र को केवल पुरुषों के समाज में बैठकर, पवित्र रख सका था। जो कोने में बैठकर उपन्यास पढ़ा करते हैं, उनकी अपेक्षा खुले मैदान में खेलनेवालों के विचार अधिक पवित्र रहते ;—इसी लिए फुटबॉल और हॉकी के खिलाड़ी रघुनाथ को कभी स्त्री-विषयक कल्पना ही नहीं होती थी ; वह मानवी सृष्टि से अपनी माता को छोड़कर और स्त्रियों के होने या न होने से अनभिज्ञ था। विवाह उसकी दृष्टि में एक आवश्यक किन्तु दुर्ज्ञेय बन्धन था जिसमें सब मनुष्य फँसते हैं और पिता की आज्ञानुसार वह विवाह के लिए घर उसी रुचि से आ रहा था जिससे कि कोई पहले पहल थिएटर देखने जाता है। कुएँ पर वह इतनी स्त्रियों को इकट्ठा देखकर वह सहम गया, उसके ललाट पर पसीना आ गया और उसका बस चलता तो वह बिना पानी पिये ही लौट जाता। अस्तु, चुपचाप डोर-लोटा लेकर एक कोने पर जा खड़ा हुआ और डोर खोलकर फाँसा देने लगा।

प्रयाग के बोर्डिङ्ग की टोटियों की कृपा से, जनमभर कभी कुएँ से पानी नहीं खींचा था। न लोटे में फाँसा लगाया था। ऐसी अवस्था में उसने सारी डोर कुएँ पर बखेर दी और उसकी जो छोर लोटे से बाँधी वह कभी तो लोटे को एक सौ बीस अंश के कोण पर लटकाती और कभी सत्तर पर। डोर के जब बट खुलते हैं तब वह बहुत पेच खाती है। इन पेचों में रघुनाथ की बाँहें भी

उलझ गयी सिर नीचा किये ज्यों ही वह डोर को सुलझाता था, त्यों ही वह उलझती जाती थी। उसे पता नहीं था कि गाँव की स्त्रियों के लिए वह अद्भुत कौतुक, नयनोत्सव, हो रहा था।

धीरे-धीरे टीका-टिप्पणी आरम्भ हो गई। एक ने हँसकर कहा 'पटवारी है, पैमाइश की ज़रीब फैलाता है।''

दूसरी बोली, 'ना, बाजीगर है, हाथ-पाँव बाँधकर पानी में कूद पड़ेगा और फिर सूखा निकल आवेगा।'

तीसरी बोली, क्यों लल्ला, घरकों से लड़कर आये हो ?'

चौथी ने कहा, 'क्या कुएँ में दवाई डालोगे ? इस गाँव में तो बीमारी नहीं है।'

इतने में एक लड़की बोली 'काहे की दवाई और कहाँ का पटवारी। अनाड़ी है, लोटे में फाँसा देना नहीं आता। भाई, मेरे घड़े को मत कुएँ में डाल देना, तुमने तो सारी मेंड़ ही रोक ली यों कहकर वह सामने आकर अपना घडा उठाकर ले गयी।

पहली ने पूछा, 'भाई तुम क्या करोगे ?'

लड़की बात काटकर बोल उठी, 'कुएँ को बाँधेंगे।'

पहली—'अरे बोलो तो।'

लड़की—'माँ ने सिखाया नहीं।'

संकोच, प्यास, लज्जा और घबराहट से रघुनाथ का गला रुक रहा था ; उसने खाँसकर कण्ठ साफ़ करना चाहा। लड़की ने भी वैसी ही आवाज़ की। इस पर पहली स्त्री बढ़कर आगे आयी और डोर उठाकर कहने लगी 'क्या चाहते हो बोलते क्यों नहीं ?'

लड़की—'फारसी बोलेंगे।'

रघुनाथ ने शरम से कुछ आँखें ऊँची की, कुछ मुँह फेरकर कुँए से कहा 'मुझे पानी पीना है,—लोटे से निकाल रहा—निकाल लूँगा।'

लड़की—'परसों तक।'

स्त्री बोली, 'तो हम पानी पिला दें। ला भगवन्ती, गगरी उठा ला। इनको पानी पिला दे।'

लड़की गगरी उठा लायी और बोली 'ले, मामी के पालतू, पानी पी ले, शरमा मत, तेरी बहू से नहीं कहूँगी।'

इस पर सब स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। रघुनाथ के चेहरे पर लाली दौड़ गयी और उसने यह दिखाना चाहा कि, मुझे कोई देख नहीं रहा है, यद्यपि दस बारह स्त्रियाँ उसके भौचकपन को देख रही थीं। सृष्टि के आदि से कोई अपनी झेंप छिपाने को समर्थ न हुआ, न होगा। रघुनाथ उलटा झेंप गया।

'नहीं, नहीं, मैं आप ही—'

लड़की—'कुएँ में कूद के।'

इस पर एक और हँसी का फौवारा फूट पड़ा।

रघुनाथ ने कुछ आँखें उठाकर लड़की की ओर देखा। कोई चौदह-पन्द्रह बरस की लड़की, शहर की छोकरियों की तरह पीली और दुबली नहीं, हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्नमुख। आँखों के डेले काले, कोए सफेद नहीं, कुछ मटिया नीले और पिघलते हुए। यह जान पड़ता था कि डेले अभी पिघलकर बह जायेंगे। आँखों के चौतरफ़ हँसी, ओठों पर हँसी औ सारे शरीर पर नीरोग स्वास्थ्य की हँसी। रघुनाथ की आँखें और नीची हो गईं।

स्त्री ने फिर कहा 'पानी पी लो जी, लड़की खड़ी है।'

रघुनाथ ने हाथ धोये। एक हाथ मुँह के आगे लगाया ; लड़की गगरी से पानी पिलाने लगी। जब रघुनाथ आधा पी चुका था तब उसने श्वास लेते-लेते आँखें ऊँची की। उस समय लड़की ने ऐसा मुँह बनाया कि, ठिः ठिः करके रघुनाथ हँस पड़ा, उसकी नाक में पानी चढ़ गया और सारी आस्तीन भीग गयी। लड़की चुप।

रघुनाथ को खाँसते, डगमगाते विकलाते देखकर वह स्त्री आगे चली आयी और गगरी छीनती हुई लड़की को झिड़ककर बोली 'तुझे रातदिन ऊतपन ही सूझता है। इन्हें गलसूँड चला गया। ऐसी हँसी भी किस काम की। लो, मैं पानी पिलाता हूँ।' लड़की—"दूध पिला दो, बहुत देर हो हुई ; आँसू भी पोंछ दो।"

सच्चे ही रघुनाथ के आँसू आ गये थे। उसने स्त्री से जल लेकर मुँह धोया और पानी पिया। धीरे से कहा "बस जी, बस।"

लड़की—अब के आप निकाल लेंगे।

रघुनाथ को मुँह पोछते देखकर स्त्री ने पूछा 'कहाँ रहते हो?' 'आगरे।'

'इधर कहाँ जाओगे?'

लड़की—(बीच ही में)—'शिकारपुर, वहाँ ऐसों का गुरुद्वारा है।' स्त्रियाँ खिलखिला उठीं।

रघुनाथ ने अपने गाँव का नाम बताया। 'मैं पहले कभी इधर आया नहीं, कितनी दूर है, कब तक पहुँच जाऊँगा?' अब भी वह सिर उठाकर बात नहीं कर रहा था।

लड़की—'यही पन्द्रह बीस दिन में, तीन सौ कोस तो होगा।'

स्त्री—छिः, दो ढाई भर है, अभी घण्टे भर में पहुँच जाते हो।

'रास्ता सीधा ही है न?'

लड़की—नहीं तो, बायें हाथ को मुड़कर चीड़ के पेड़ के नीचे दहने को मुड़ने के पीछे सातवें पत्थर पर फिर बायें मुड़ जाना, आगे सीधे जाकर कहीं न मुड़ना;—सबसे आगे एक गीदड़ की गुफा है उससे उत्तर को बाड़ उलाँघकर चले जाना।

स्त्री—छोकरी, तू बहुत सिर चढ़ गयी है चिकर-चिकर करती ही जाती है। नहीं जी, एक ही रास्ता है; सामने नदी आवेगी; परले बाँये हाथ को गाँव है।

लड़की—'नदी में भी यों ही फाँसा लगाकर पानी निकालना।'

स्त्री उसकी बात अनसुनी करके बोली 'क्या उस गाँव में डाक बाबू हो आये हो।'

रघुनाथ—नहीं, मैं तो प्रयाग में पढ़ता हूँ।

लड़की—ओ हो, पिरागजी में पढ़ते हैं—कुएँ से पानी निकालना पढ़ते होंगे?

स्त्री—चुपकर, ज़्यादा बकबक काम की नहीं; क्या इसी लिए तू मेरे यहाँ आयी है?

लड़की—ना, मामी, पिरागजी के बुद्धुओं को पानी पिलाने आयी हूँ।

इसपर महिलामण्डल फिर हँस पड़ा। रघुनाथ ने घबराकर इलाही की

ओर देखा तो वह मजे में पेड़ के नीचे चिलम पी रहा था। इस समय रघुनाथ को हाजी इलाही की ईर्ष्या होने लगी। उसने सोचा कि हज से लौटते समय समुद्र के ख़तरे कम हैं और कुएँ पर अधिक।

लड़की—क्यों जी, पिरागजी में अक्कल भी बिकती है?

रघुनाथ ने मुँह फेर लिया।

स्त्री—तो गाँव में क्या करने जाते हो?

लड़की—कमाने-खाने।

स्त्री—तेरी कैंची नहीं बन्द होती। यह लड़की तो पागल हो जायगी।

रघुनाथ—मैं वहाँ के बाबू शोभारामजी का लड़का हूँ।

स्त्री—अच्छा, अच्छा, तो क्या तुम्हारा ही व्याह है? रघुनाथ ने सिर नीचा कर लिया।

लड़की—मामी, मामी, मुझे भी अपने नये पालतू के व्याह में ले चलना। बना व्याहने चला है। यह घोड़ी है और वह जो चिलम पी रहा है नाना बनेगा। वाहजी वाह, ऐसे बुद्धू के आगे भी कोई लहँगा पसारेगी!

स्त्री लड़की की ओर झपटी। लड़की गगरी उठाकर चलती बनी। स्त्री उसके पीछे दस ही कदम गई थी कि स्त्री-महामण्डल एक अट्टाहास से गूँज उठा।

रघुनाथ इलाही के पास लौट आया। पीछे मुड़कर देखने की उसकी हिम्मत न हुई। उसके गले में भस्म का-सा स्वाद आ रहा था। जीवन भर में यही उसका स्त्रियों से पहला परिचय हुआ। उसकी आत्मलज्जा इतनी तेज थी कि वह समझ गया कि मैं इनके सामने बन गया हूँ। जीवन में ऐसी ही स्त्रियों से आधा संसार भरा रहेगा और ऐसी ही किसी से विवाह होगा। तुलसीदास ने ठीक कहा है कि "तुलसी गाय बजाय के दियो काठ में पाँव।" स्त्रियों की ठठोली के वाक्य उसे गड़ रहे थे और सब वाक्यों के दुःस्वप्नों के ऊपर उस पिघलती हुई आँखोंवाली कन्या का चित्र मँडरा रहा था।

बड़े ही उदास चित्त से रघुनाथ घर पहुँचा।

(४)

गाँव पहुँचने के तीसरे दिन रघुनाथ सबेरा होते ही घमने को निकला।

पहाड़ी जमीन, जहाँ रास्ता देखने में कोस भर जँचे और चाहे उसमें दस मील का चक्कर काट लो ; बिना पानी सींचे हुए हरे मखमल में गलीचे से ढकी हुई जमीन, उस पर जंगली गुरुदाऊदी की पीली टिमकियाँ और वसन्त के फूल, आलूबोखारे और पहाड़ी करौंदे की रज से भरे हुए छोटे-छोटे रँगीले फूल जो पेड़ का पत्ता भी न दिखने दें ; क्षितिज पर लटके हुए बादलों की सी बरफ़ीले पहाड़ों की चोटियाँ जिन्हें देखते आँखें अपने आप बड़ी हो जाती और जिनकी हवा की साँस लेने से छाती बढ़ती हुई जान पड़ती ; नदी से निकाली हुई छोटे-छोटी असंख्य नहरें जो साँप के से चक्कर खा-खाकर फिर प्रधान नदी की पथरीली तलेटी में जा मिलती—ये सब दृश्य प्रयाग के ईंटों के घर और कीचड़ की सड़कों से बिल्कुल निराले थे। चलते-चलते रघुनाथ का मन नहीं भरा और घाटी के उतार-चढ़ाव की गिनती न करके वह नदी की चक्करों की सीध में हो लिया। एक ओर आम के पेड़ थे जो बौरों और केरियों[1] से लदे हुए थे, उनके सामने धान के खेत थे जिनमें से पानी किलचिल, किलचिल करता हुआ टिचल रहा था। कहीं इसे कँटीली बाड़ों के 'बीच में होकर जाना पड़ता था और कहीं छोटे-छोटे झरने, जो नदी में जा मिले थे, लाँघने पड़ते थे। इन प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेता हुआ हमारा चरित्रनायक नदी की ओर बढ़ा।'[2]

इस समय वहाँ कोई न था। रघुनाथ ने एक अकृत्रिम घाट—चौड़ी शिला—पर खड़े होकर नदी की शोभा देखी और सोचा कि, हजामत बनाकर नहा-धोकर घर चलें। नयी सभ्यता के प्रभाव से सेफ़्टीरेज़र और साबुन की टिकिया सफ़री कोट की जेब में थी ही, ऊपर की जेब की पॉकेटबुक से एक आइना भी निकल पड़ा। रघुनाथ उसी शिलाफलक पर बैठ गया और अपने मुखरूपी आकाश पर छाये हुए कोमल बादलों को मिटाने के लिए अमेरिका के इस जेबी वज्र को चलाने लगा।

कवियों को सोचने का समय पाखाने में मिलता है और युवाओं को

---

१ छोटे कच्चे आम। २ 'बाड़ों के' से लेकर 'इस समय' तक की तीन-चार पंक्तियाँ अप्राप्य होने पर ये तीन पंक्तियाँ जोड़ी गई हैं।

सम्पादक

स्वयं हजामत करने में। यदि नाई होता तो संसार के समाचारों से वही मग़ज चाट जाता है। इसकी वैज्ञानिक युक्ति मुझे एक थियासोफ़िस्ट ने बतायी थी। वह बहुत से तर्क और कुतर्कों में सिद्ध कर रहा था कि पुरानी चालों में सूक्ष्म वैज्ञानिक रहस्य भरे पड़े हैं। यहाँ तक कि माता बच्चे के सिर में नज़र से बचाने के लिए जो काजल का टीका लगा देती हैं अथवा दूध पिलाये पीछे बच्चे को धूल की चुटकी चटा देती हैं इसका भी वह बिजली के विज्ञान से समाधान कर रहा था। उसने कहा कि हजामत बनाते या बनवाते समय रोम खुल जाने से मस्तिष्क तक के स्नायुतारों की बिजली हिल जाती है और वहाँ विचारशक्ति की खुजलाहट पहुँच जाती है। अस्तु।

रघुनाथ की खुजलाहट का आरम्भ यों हुआ कि यह नदी सहस्रों वर्षों से यों ही बह रही है और यों ही बहती जायगी। किनारे के पहाड़ों ने, ऊपर के आकाश ने, और नीचे की मिट्टी ने उसको यों ही देखा है और यों ही वे उसे देखते जायँगे। यही क्या, नदी का प्रत्येक परमाणु अपने आगेवाले परमाणु की पीठ को और पीछेवाले परमाणु के सामने को देखता जाता है। अथवा, क्या पहाड़ को या तलेटी को नदी की खबर है? क्या नदी के एक परमाणु को दूसरे की खबर है? मैं यहाँ बैठा हूँ इन परमाणुओं को, इन पत्थरों, इन बादलों को मेरी क्या खबर है। इस समय आगे-पीछे, नीचे-ऊपर, कौन मेरी पर्वाह करता है? मनुष्य अपने घमण्ड में त्रिलोकी का राजा बना फिरे, उसे अपने आत्माभिमान के सिवा पूछता ही कौन है? इस समय मेरा यह क्षौर[1] बनाना किसके लिए ध्यान देने योग्य है? किसे पड़ी है कि मेरी लीलाओं पर ध्यान रखे।

इसी विचार की तार में ज्यों ही उसने सिर उठाया त्यों ही देखा कि, कम से कम एक व्यक्ति को तो उसकी लीलाएँ ध्यान योग्य हो रही थी जो उनका अनुकरण करती थी। रघुनाथ क्या देखता है कि वह पानी पिलानेवाली लड़की सामने एक दूसरी शिला पर बैठी हुई है और उसकी नकल कर रही है।

उस दिन की हँसी की लज्जा रघुनाथ के जी से नहीं हटी थी। वह लज्जा

---

१ हजामत।

और संकोच के मारे यही आशा करता था कि फिर कभी वह लड़की मुझे न दिखायी पड़े और अपनी ठठोलियों से मुझे तंग न करे। अब, जिस समय वह यह सोच रहा था कि, मुझे कोई नहीं देख रहा है, वही लड़की उसके हजामत बनाने की नकल कर रही है। उसने हाथ में एक तिनका ले रखा है। जब रघुनाथ उस्तरा चलाता है तब वह तिनका चलाती है। जब रघुनाथ हाथ खींचता है, तब वह तिनका रोक लेती है।

रघुनाथ ने मुँह दूसरी ओर किया। उसने भी वैसा ही किया। रघुनाथ ने दाहिना घुटना उठाकर अपना आसन बदला। वहाँ भी ऐसा ही हुआ। रघुनाथ ने बायीं हथेली धरती पर टेककर अँगड़ाई ली; लड़की ने भी वही मुद्रा की। ये सब प्रयोग रघुनाथ ने यह निश्चय करने के लिए ही किये थे कि, यह लड़की क्या वास्तव में मेरा मखौल कर रही है। उसने हलका सा खँखारा, रघुनाथ ने उतना ही खँखारना उधर से सुना। अब सन्देह नहीं रह गया।

ऐसे अवसर पर बुद्धिमान् लोग जो करना चाहते हैं, वही रघुनाथ ने किया। अर्थात् वह मुँह बदलकर अपना काम करता गया और उसने विचार किया कि मैं उधर न देखूँगा। इस विचार का वही परिणाम हुआ जो ऐसे विचारों का होता है अर्थात् दो ही मिनट में रघुनाथ ने अपने को उसी ओर देखते हुए पाया। अब लड़की ने भी अपना आसन बदल लिया था। रघुनाथ ने कई बार विचार किया कि मैं उधर न देखूँगा, पर वह फिर उधर ही देखने लगा। आँखे, जो मानो अभी पानी होकर बह जायँगी, सफेद हलका नीला कौआ, जिसमें एक प्रकार की चञ्चलता, हँसी और घृणा तैर रही थीं।

यह लड़की यों पिण्ड नहीं छोड़ेगी। मैंने इसका क्या बिगाड़ा है? इससे पूछूँ क्या? पूछूँ तो फिर वैसे बनायेगी? पर खैर, आज तो अकेली यही है। इसकी चोटों पर साधुवाद करने के लिये महिला-मण्डल तो नहीं है। यह सोचकर रघुनाथ ने ज़ोर से खँखारा। वही जवाब मिला। उसने हाथ बढ़ाकर अँगड़ाई ली। वहाँ भी कंगा तोड़े गये। रघुनाथ ने एक पत्थर उठाकर नदी में फेंका, उधर से भी ढेला फेंका गया और बलब करके पानी में बोला।

यह बिना बचनों की छेड़ रघुनाथ से सही न गयी। उसने एक छोटी सी कंकरी उठाकर लड़की की शिला पर मारी। जवाब में वैसी ही एक कंकरी रघुनाथ के शिला में आ बजी। रघुनाथ ने दूसरी कंकरी उठाकर फेंकी जो लड़की के समीप जा पड़ी। इसपर एक कंकरी आकर रघुनाथ की पॉकेट बुक के आईने पर पट से बोली और उसे फोड़ गयी। रघुनाथ कुछ चिढ़ गया, उसकी हिम्मत कुछ बढ़ गयी; अबके उसने जो कंकरी मारी कि, वह लड़की के हाथ पर जा लगी।

इस पर लड़की ने हाथ को झट से उठाया और स्वयं उठी। जहाँ रघुनाथ बैठा था, वहाँ आई और उसके देखते देखते उसके सामने से टोपी, उस्तरा और पाकेट बुक तथा साबुन की बट्टी को उठाकर नदी की ओर बढ़ी। जितना समय इस बात को लिखने और बाँचने[1] में लगा है, उतना समय भी नहीं लगा कि, उसने सबको पानी में फेंक दिया। रघुनाथ उसके हाथ को नदी की ओर बढ़ते हुए देख, उसका तात्पर्य समझकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ सा होकर ज्यों ही दो कदम आगे धरता है कि पंकली शिला पर उसका पैर फिसला और वह धड़ाम से सिर के बल पानी में गिर पड़ा।

रघुनाथ तैरना नहीं जानता था, यद्यपि वह मित्रों के साथ जाकर दारागञ्ज की गंगा में नहा आया करता था। परन्तु चाहे कितना तैराक हो, औंधे सिर पानी में गिरने पर तो गोता खा ही जाता है। रघुनाथ का सिर पैंदे के पास पहुँचते ही उसने दो गोते खाये और सीधा होते होते उसकी साँस टूट गई। यों तो नदी में पानी रघुनाथ के सिर से कुछ ही ऊंचा था और धीरज से उसके पैर टिक जाते तो वह हाथ फटफटाकर किनारे आ लगता, क्योंकि वह बहुत दूर नहीं गया था। पर फिसलने की घबराहट, साँस का टूटना, गले में पानी भर जाना, नीचे दलदल—इन सबसे वह भौंचक होकर बीस-तीस हाथ बढ़ता ही चला गया। नदी की तलेटी में चट्टान थी जो पानी के बहाव से क्रमशः घिरती जाती थी। वहाँ पानी का नाला कुछ ज़ोर से बढ़कर चक्कर खाता था। वहाँ पहुँचकर, पानी कम होने पर भी, हाथ-पाँव मारने पर भी, रघुनाथ के पैर नहीं टिके और उछलता हुआ पानी

---

[1] पढ़ने।

उसके मुँह में गया। वह नदी के बहाव की ओर जाने लगा। बालिका ने जान लिया कि बिना निकाले वह पानी से निकल न सकेगा। वह झट सारी से कछौटा कसकर पानी में कूद पड़ी। जल्दी से तैरती हुई आकर उसने रघुनाथ का हाथ पकड़ना चाहा कि इतने में रघुनाथ एक और चक्कर काटकर सिर पानी के नीचे करके खाँसने लगा। लड़की के हाथ उसकी चमड़े की पेटी आई जो उसने पतलून के ऊपर बाँध रखी थी। वह एक हाथ से उसे खींचती हुई रघुनाथ को छर्रे के बहाव से निकाल लाई और दूसरे हाथ से पानी हटाती हुई किनारे की ओर बढ़ने लगी। अब रघुनाथ भी सीधा हो गया था, पानी चीरने में खड़ा या मुड़ा आदमी लेटे हुए की अपेक्षा बहुत दुःखदायी होता है। हाँफती हुई कुमारी ने बिडराये हुए रघुनाथ को किनारे लगाया। रघुनाथ मुँह और बालों का पानी निचोड़ता हुआ तरबतर कुरते और पतलून से धाराएँ बहाता हुआ चट्टान पर बैठा। पाँच-सात बार खाँसने पर आँखें पोंछने पर उसने देखा कि भीगी हुई कुमारी उसके सामने खड़ी है और उन्हीं पिघलती हुई आँखों से घृणा, दया और हँसी झलकाती हुई कह रही है कि —

इस अनाड़ी के सामने भी कोई अपना लहँगा पसारेगी !

ये सब घटनाएँ इतनी जल्दी जल्दी हुई थीं कि रघुनाथ का सिर चकरा रहा था। अभी पानी की गूँज कानों को ढोल किये हुए थी और मानसिक क्षोभ और लज्जा से वह पागल-सा हो रहा था। उसके मन की पिछली भित्ति पर चाहे यह अङ्कित रहा हो कि इस लड़की ने मुझे नदी में से निकाला है, पर सामने की भित्ति पर यही था कि शब्द के कीड़ों से यह मेरी चमड़ी उधेड़े डालती है। रघुनाथ उसे पकड़ने के लिए लपका और लड़की दो खेतों की बाड़ के बीच की तङ्ग सड़क पर दौड़ भागी। रघुनाथ पीछा करने लगा।

गाँव की लड़कियाँ हड्डियों और गहनों का बण्डल नहीं होतीं। वहाँ वे दौड़ती हैं, कूदती हैं, तैरती हैं, हँसती हैं, गाती हैं, खाती हैं और पचाती हैं। शहरों में आकर वे खूँटे से बँधकर कुम्हलाती हैं, पीली पड़ जाती हैं, भूखी रहती हैं, सोती हैं, रोती हैं और मर जाती हैं। रघुनाथ ने मील की दौड़ में इनाम पाया था। इस समय का दौड़ना उसके बहुत गुण बैठा। पानी में

गोते खाने के पीछे की सारी शरीर की शून्यता मिटने लगी। पावमील दौड़ने पर लड़की जितने हाथ आगे बढ़ती थी वे घटने लगे और सौ गज और जाते जाते अचानक चीख मारकर लड़खड़ाकर वह गिरने लगी। रघुनाथ उसके पास जा पहुँचा। अवश्य ही रघुनाथ को इतने हँफानेवाले श्रम के और मानसिक क्षोभ के पीछे यही भाव था कि इस लड़की को गुस्ताखी के लिए दण्ड दूँ। रघुनाथ ने उसे दोनों बाहें डालकर पकड़ लिया। रघुनाथ के लिए यह स्त्री का और उस लड़की के लिए पुरुष का यह पहला स्पर्श था। रघुनाथ कुछ सोच भी न पाया था कि मैं क्या करूँ, इतने में लड़की ने मुँह उसके सामने करके अपने नखों से उसकी पीठ में और बगल में बहुत तेज़ चुटकियाँ काटीं। रघुनाथ की बाँह ढीली हुई, पर क्रोध नहीं। उसने एक मुक्का लड़की की नाक पर जमाया। लड़की साँस लेते रुकी। इतने में दौड़ने के वेग से, जो अभी न रुका था और मुक्के से दोनों नीचे गिर पड़े। दोनों धूल में लोट-मलोट हो गये।

रघुनाथ धूल झाड़ता हुआ उठा। क्या देखता है कि लड़की के नाक से लहू बह रहा है। अपने विजय का पहला आवेश एकदम से भूलकर वह पाश्चात्ताप और दुःख के पाश में फँस गया। उसका मुँह पसीना-पसीना हो गया। यह चाहता था कि इन लहू के बूँदों के साथ मैं भी धरती में समा जाऊँ और उनके साथ ही अपनी आँखें भूमि में गड़ा भी रहा था। परन्तु फिर क्षण में आँखें उठ आयीं। लड़की अपने भीगे और धूल लगे हुए आँचल से नाक पोंछती हुई, उन्हीं आँखों में वही घृणा की और पछतावे की दृष्टि डालती हुई, कह रही थी—

'वाह अच्छे मर्द हो। बड़े बहादुर हो। स्त्रियों पर हाथ उठाया करते हैं ?'

रघुनाथ चुप।

'वाह, पिरागजी में खूब इलम पढ़ा। स्त्रियों पर हाथ उठाते होंगे।'

रघुनाथ ने नीचे सिर से, आँखें न उठाकर कहा—

'मुझसे बड़ी भूल हो गयी। मुझे पता ही नहीं था कि मैं क्या क्या कर रहा हूँ। मेरा सिर ठिकाने नहीं है। मुझे चक्कर—'

'अभी चक्कर आवेंगे। स्त्रियों पर हाथ नहीं चलाया करते हैं।'

सड़क यहाँ चौड़ी हो गयी थी। कचनार की एक बेल आम पर चढ़ी हुई थी और आम के तले पत्थरों का थाँवला था। सुनसान था। दूर से नदी की कलकल और रह-रहकर खातीचिड़े की ठकठक-ठकठक आ रही थी। इस समय रघुनाथ का घोंघापन हटने लगा और स्त्रियों की ओर से झेंप इस पिघलती हुई आँखोंवाली के वचन-वाणों के नीचे भागने लगी। ढाढस करके उसने पूछा—

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'भागवन्ती।'

'रहती कहाँ हो ?'

'मामी के पास—वही जिसने कुएँ पर पानी पिलाया था।'

उस दिन का स्मरण आते ही रघुनाथ फिर चुप हो गया। फिर कुछ ठहरकर बोला—'तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो ?'

'तुम्हें आदमी बनाने को। जो तुम्हें बुरा लगा हो तो मैंने भी अपने किये का लहू बहाकर फल पा लिया। एक सलाह दे जाती हूँ।'

'क्या ?'

'कल से नदी में नहाने मत जाना।'

'क्यों ?'

'गोते खाओगे तो कोई बचानेवाला नहीं मिलेगा।'

रघुनाथ झेंपा, पर सम्हलकर बोला कि 'अब कोई मेरी जान बचायेगा तो मैं पीछा नहीं करूँगा, दो गाली भी सुन लूँगा।'

'इसलिए नहीं, मैं आज अपने बाप के यहाँ जाऊँगी।'

'तुम्हारा घर कहाँ है ?'

'जहाँ अनाड़ियों के डूबने के लिए कोई नदी नहीं है।'

'हुँ ! फिर वही बात लायी। तो वहाँ पर चिढ़ानेवालों के भागने के लिए रास्ता भी न होगा।'

'जी यहाँ जो मैं आपके हाथ आ गयी।'

'नहीं तो ?'

'काँटा न लगता तो प्रयाग तक दौड़ते तो हाथ न आती।'

'काँटा ! काँटा कैसा ?'

'यह देखो।'

रघुनाथ ने देखा कि उसके दाहने पैर के तलवे में एक काँटा चुभा हुआ है। उसको यह सूझी कि यह मेरे दोष से हुआ है। बालिका के सहारे वह घुटने के बल बैठ गया और उसका पैर खींचकर रूमाल से धूल झाड़कर काँटे को देखने लगा।

काँटा मोटा था, पर पैर में बहुत पैठ गया था। वह उठकर बाड़ से एक और बड़ा काँटा तोड़ लाया। उससे और पतलून की जेब के चक्कू से काँटा निकाला। निकालते ही लोहू का डोरा बह निकला। काँटा प्रायः दो इञ्च लम्बा और ज़हरीली कँटीली का था।

'आफ़', कहकर रघुनाथ ने कमीज़ की आस्तीन फाड़कर उसके पाँव में पट्टी बाँध दी।

बालिका चुप बैठी थी। रघुनाथ काँटे को निरख रहा था।

'अब तो दर्द नहीं है ?'

'कोई एहसान थोड़ा है ; तुम्हारे भी कभी काँटा गड़ जाय तो निकलवाने आ जाना।'

'अच्छा।' रघुनाथ का जी जला था। यह बरताव !

'अच्छा क्या, जाओ, अपना रास्ता लो।'

'यह काँटा मैं ले जाऊँगा—आज की घटना की यादगारी रहेगी।'

'मैं इसे ज़रा देख लूँ।'

'रघुनाथ ने अँगूठे और तर्जनी से काँटा पकड़कर उसकी ओर बढ़ाया। अपनी दो अँगुलियों से उसे उठाकर और दूसरे हाथ से रघुनाथ को धक्का देकर लड़की हँसती हँसती दौड़ गयी। रघुनाथ धूल में एक कलामुण्डी खाकर ज्यों ही उठा कि बालिका खेतों को फाँदती हुई जा रही थी।

अबकी दफ़ा उसका पीछा करने का साहस हमारे चरित्र-नायक ने नहीं किया। नदी-तट पर जाकर कोट उठाया और चौंधिआये मस्तिष्क से घर की राह ली।

(५)

रघुनाथ के हृदय में स्त्रीजाति की अज्ञानता का भाव और उससे पृथक् रहने का कुहरा तो था ही, अब उनके स्थान में उद्वेगपूर्ण ग्लानि का धूम इकट्ठा हो गया था। पर इस धूम के नीचे-नीचे उस चपल लड़की की चिनगारी भी चमक रही थी। अवश्य ही अपने पिछले अनुभव से वह इतना चमक गया था कि किसी स्त्री से बात करने की उनकी इच्छा न थी, परन्तु रह-रहकर उसके चित्त में उस पिघलती हुई आँखोंवाली का और अधिक हाल जानने और उसके वचन-कोड़े सहने की इच्छा होती। रघुनाथ का हृदय एक पहेली हो रहा था और उस पहेली में पहेली उस स्वतन्त्र लड़की का स्वभाव था। रघुनाथ का हृदय धुएँ से घुट रहा था और विवाह के पास आते हुए अवसर को वह उसी भाव से देख रहा था, जैसे चैत्रकृष्ण में बकरा आनेवाले नवरात्रों को देखता है।

इधर पिता और चाचा वर खोज रहे थे। आसपास गाँवों में तीन-चार पात्रियाँ थीं, जिनके पिता अधिक धन के स्वामी न होने से अब तक अपना भार न उतार सके थे और अब बृहस्पति के सिंह का कवल हो जाने को अपने नरकगमन का पर्वाना-सा देखकर भी आत्मघात नहीं कर रहे थे। हिन्दूसमाज में धौंस से कुछ नहीं होता, ज़रूरत से सब हो जाता है। बड़े से बड़ा महराज थैलियों के मुँह खुलवाकर भी शास्त्रजड़ लोगों से यह नहीं कहला सकता कि 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी' पर हरताल लगा दो। उलटा अष्ट का अर्थ गर्भाष्टम करके सात वर्ष तीन महीने की आयु निकाल बैठेंगे। परन्तु कभी शुक्र का छिपना, और कभी बृहस्पति का भगना, कभी घर का न मिलना और कभी पल्ले पैसा न होना, कभी नाड़ीविरोध और कभी कुछ—समझदार आदमी चाहे तो कन्या को चौदह-पन्द्रह वर्ष की करके काशीनाथ से लेकर आजकल के महामहोपाध्यायों तक को अँगूठा दिखला सकता है।

दो घर तो ज्योतिषी ने खो दिये। तीसरे के बारे में भी उन्होंने लत्तापात करना चाहा था, पर कुछ तो ज्योतिषीजी के डाकखाने के द्वारा मनीआर्डर का ग्रहों पर प्रभाव पड़ा और कुछ रघुनाथ के पिता के इस बिहारी के दोहे के पाठ का ज्योतिषीजी पर—

सुत पितु मारक जोग लखि,
उपज्यो हिय अति सोग।
पुनि विहँस्यो गुन जोयसी,
सुत लखि जारज जोग॥

विधि मिल गयी। झण्डीपुर में सगाई निश्चित हुई। बीस दिन पीछे बरात चढ़ेगी और रघुनाथ का विवाह होगा।

(६)

कन्यादान के पहले और पीछे वर कन्या को, ऊपर एक दुशाला डालकर, एक दूसरे का मुँह दिखाया जाता है। उस समय दुलहा-दुलहिन जैसा व्यवहार करते हैं, उससे ही उनके भविष्य दाम्पत्यसुख का थर्मामीटर माननेवाली स्त्रियाँ बहुत ध्यान से उस समय के दोनों के आकार-विकार को याद रखती हैं। जो हो, झण्डीपुर की स्त्रियों में यह प्रसिद्ध है कि मुँहदिखौनी के पीछे लड़के का मुँह सफेद फक हो गया और विवाह में जो कुछ होम वग़ैरह उसने किये, वे पागल की तरह। मानों उसने कोई भूत देखा था। और लड़की ऐसी गुम हुई कि उसे काटो तो ख़ून नहीं। दिन भर वह चुप रही और बिहराई आँखों से ज़मीन देखती रही; मानो उसे भी भूत दिख रहे हों। स्त्रियों ने इन लक्षणों को बहुत अशुभ माना था।

दुलहिन डोले में बिदा होकर ससुराल आ रही थी। रघुनाथ घोड़े पर था। दुपहर चढ़ने से कहारों और बरातियों ने एक बड़ की छाया के नीचे बावड़ी के किनारे डेरा लगाया कि रोटी-पानी करके और धूप काट के चलेंगे। कोई नहाने लगा, कोई चूल्हा सुलगाने। दुलहिन पालकी का पर्दा हटाकर हवा ले रही थी और अपने जीवन की स्वतन्त्रता के बदले में पायी हुई सुनहरी हथकड़ियों और चाँदी की बेड़ियों को निरख रही थी। मनुष्य पहले पशु है, फिर मनुष्य। सभ्यता का या शान्ति का भाव पीछे आता है, पहले पाशविक बल का और विजय का। रघुनाथ ने पास आकर कहा—

'क्या कहा था, ऐसे मर्द के आगे कौन लहँगा पसारेगी?'

सिर पालकी के भीतर करके बालिका ने परदा डाल लिया।

रघुनाथ ने यह नहीं सोचा कि उसके जी पर क्या बीतती होगी। उसने

अपनी विजय मानी और उसी की अकड़ में बदला लेना ठीक समझा।

'हाँ, फिर तो कहना, इस बुद्ध के आगे कौन लहँगा पसारेगी ?'

चुप।

'क्यों, अब वह कैंची की सी जीभ कहाँ गयी ?'

चुप।

कहाँ तो रघुनाथ छेड़ से चिढ़ाता था, अब कहाँ वह स्वयं छेड़ने लगा। उसकी इच्छा पहले तो यह थी कि यह बोली कभी न सुनूँ, परन्तु अब वह चाहता था कि मुझे फिर वैसे ही उत्तर मिलें। विवाह के अपने अचम्भे के पीछे उसने दुःख की आह के साथ ही साथ एक सन्तोष की आह भी भरी थी ; क्योंकि पहले दिनों की घटनाओं ने उसके हृदय पर एक बड़ा अद्भुत परिवर्तन कर दिया था।

'कहो जी, अब प्रयागवालों को अक़ल सिखाने आयी हो ? अब इतनी बातें कैसे सुनी जाती हैं ?'

"मैं हाथ जोड़ती हूँ, मुझसे मत बोलो। मैं मर जाऊँगी।

"तो नदी में डूबते हुए बुद्धुओं को कौन निकालेगा ?"

"अब रहने दो। यहाँ से हट जाओ। चले आओ"

"क्यों ?"

"क्यों क्या, अब इस चक्की में ऐसा ही पिसना है। जनमभर का रोग है; और जनमभर का रोना है।"

"नहीं; मुझे अक़ल सीखने का—" रघुनाथ ने व्यङ्ग से आरंभ किया था, पर इतने में एक कहार चिलम में तमाखू डालने आ गया। भूमिका की सफ़ाई बिना कहे और बिना हुए ही रह गयी।

(७)

हिन्दू घरों में, कुछ दिनों तक, दम्पति चोरों की तरह मिलते हैं। यह संयुक्त कुटुम्बप्रणाली का वर या शाप है। रघुनाथ ने ऐसे चोरी के अवसर आगरे आकर ढूँढने आरम्भ किये, पर भागवन्ती टल जाती थी। उसने रघुनाथ को एक भी बात कहने का, या सुनने का मौका न दिया।

जुलाई में रघुनाथ इलाहाबाद जाकर थर्ड इयर में भरती हो गया।

दशहरे और बड़े दिन की छुट्टियों में आकर उसने बहुतेरा चाहा कि दो बातें कर सके, पर भागवन्ती उसके सामने ही नहीं होती थी। हाँ कई बार उसे यह सन्देह हुआ कि वह मेरी आहट पर ध्यान रखती है और छिप-छिपकर मुझे देखती है, पर ज्यों ही वह इस सूत पर आगे बढ़ता कि भागवन्ती लोप हो जाती।

पढ़ने की चिन्ता में विघ्न डालनेवाली अब उसको यह नयी चिन्ता लगी। यह बात उसके जी में जम गयी कि मैंने अमानुष निर्दयता से और बोली-ठोली से उसके सीधे हृदय को दुखा दिया है। परन्तु कभी कभी यह सोचता कि, क्या दोष मेरा ही है? उसने क्या कम ज़्यादती की थी? जो ताने-तिश्ने उस समय उसके हृदय को बहुत ही चीरते हुए जान पड़े थे, वे अब उसकी स्मृति में बहुत प्यारे लगने लगे। सोचा था कि मैं ही जाकर क्षमा माँगूँगा। जिन आँखों ने उसका पीछा किया था, उन्हें बाँधकर उसके सामने पड़कर कहूँगा कि उस दिनवाली चाल से मुझे कुचलती हुई चली जा। अथवा यह कहूँगा कि उसी नदी में मुझे ढकेल दे। यों तरह तरह के तर्क-वितर्कों में उसका समय कटने लगा। न 'हॉकी' में अब उसकी क़दर रही और न प्रोफ़ेसरों की आँखें वैसी रहीं। उसी कीचड़ लगे हुए पतलून को मेज़ पर रखकर सोचता, सोचता, सोचता रहता।

होली की छुट्टियाँ आयीं। पहले सलाह हुई कि घर न जाऊँ, काशी में एक मित्र के पास ही छुट्टियाँ बिताऊँ। उस मित्र ने प्रसङ्ग चलने पर कहा 'हाँ, भाई, ब्याह के पीछे पहली होली है, तुम काहे के चलते हो?' वह रघुनाथ के हृदय के भार को क्या समझ सकता था? रघुनाथ ने हँसकर बात टाल दी। रात को सोचा कि चलो छुट्टियों में बोर्डिंग में ही रहूँ, पास ही पब्लिक लाइब्रेरी है, दिन कट जायँगे। रात को जब सोया तो पिघलती हुई आँखें, वही नाक से बहता हुआ ख़ून और वहीं आँसुओं से न ढकनेवाली हँसी! नींद न आ सकी। जैसे कोई सुपने में चलता है, वैसे बेहोशी में ही सवेरे टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गया। पता नहीं कि मैं किधर जा रहा हूँ। चेत तब हुआ जब कुली "टूँडला" "टूँडला" चिल्लाये। रघुनाथ चौंका। अच्छा जो हो, अबकी दफ़ा फिर उद्योग करूँगा, यों कहकर हृदय को दृढ़ करके घर पहुँचा।

होली का दिन था। जैसे कोजागर पूर्णिमा को चोरों के लिए घर के दरवाजे खुले छोड़कर हिन्दू सोते हैं, वैसे माता-पिता टल गये थे। माँ पकवान पका रही थी और बाप—ख़ैर बाप भी कहीं थे। रघुनाथ भीतर पहुँचा। भागवन्ती सिर पर हाथ धरे हुए कोने में बैठी थी। उसे देखते ही खड़ी हो गयी। वह दरवाज़े की तरफ़ बढ़ने न पायी थी कि रघुनाथ बोला "ठहरो बाहर मत जाना।"

वह ठहर गयी। घूँघट खींचकर कोने की पीढ़ी के बान को देखने लगी।

"कहो कैसी हो ? आज तुमसे बातें करनी हैं।"

चुप।

"प्रसन्न रहती हो ? कभी मेरी भी याद करती हो ?"

चुप।

"मेरी छुट्टियाँ तीन ही दिन को हैं ;"

चुप।

"तुम्हें मेरी कसम है, चुप मत रहो, कुछ बोलो तो, जवाब दो—पहले की तरह ताने ही में बोलो, मेरी शपथ है—सुनती हो ?

"मेरे कानों में पानी थोड़ा ही भर गया है।"

"हाँ, बस, यों ठीक है ;कुछ ही कहो पर कहती जाओ। अच्छा होता तुम मुझे उस दिन न निकालती और डूब जाने देतीं।"

"अच्छा होता यदि मेरा काँटा न निकालते और पैर खलकर मैं मर जाती।"

"तुमने कहा था कि कोई एहसान थोड़ा है, काँटा गड़ जाय तो मैं भी निकाल दूँगी।"

"हाँ निकाल दूँगी" "कैसे ?" "उसी काँटे से।"

"उसी काँटे से ! वह है कहाँ ?"

"मेरे पास"

"क्यों ??" —कब से"

"जब से पतलून टङ्क में बन्द होकर आगरे गई तब से।"

न मालूम पीढ़ी का बान कैसा अच्छा था, निगाह उस पर से नहीं हटी। शायद तीलें गिनी जा रही थीं।

"अनाड़ी की बात की नकल करती हो?"

गिनती पूरी हो गयी। अब अपने नखों की बारी आयी।

"क्यों फिर चुप?"

"हाँ"—नखों पर से ध्यान नहीं हटा।

रघुनाथ ने छत की ओर देखकर कहा "अनाड़ियों की पीठ नख आजमाने के लिए अच्छी होती है।"

नख छिपा लिये गये।

"काँटा निकालोगी?"

"हाँ।"

"काँटा छत में थोड़ा ही है।"

"तो कहाँ है?"

"मैं तो अनाड़ी हूँ मुझे लल्लो-पत्तो करना नहीं आता, साफ़ कहना जानता हूँ, सुनो" यह कहकर रघुनाथ बढ़ा और उसने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये।

उसने हाथ नहीं हटाये।

"उस समय मैं जंगली था, वहसी था, अधूरा था। मनुष्य जब तक स्त्री की परछाँई नहीं पा लेता है, तब तक पूरा नहीं होता। मेरे बुद्धूपन को क्षमा करो। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रेम का एक भयङ्कर काँटा गड़ गया है। जिस दिन तुम्हें पहले पहल देखा, उस दिन से वह गड़ रहा है और अब तक गड़ा जा रहा है। तुम्हारी प्रेम की दृष्टि से मेरा यह शूल हटेगा।"

घूँघट के भीतर, जहाँ आँखें होनी चाहिए, वहाँ कुछ गोलापन दिखा।

"देखो, मैं तुम्हारे प्रेम के बिना जी नहीं सकता। मेरा उस दिन का रूखापन और जंगलीपन भूल जाओ। तुम मेरे प्राण हो, मेरा काँटा निकाल दो।

रघुनाथ ने एक हाथ उसकी कमर पर डालकर उसे अपनी ओर खींचना चाहा। मालूम पड़ा कि, नदी के किनारे का किला, नींव ले गल जाने से

धीरे-धीरे धस रहा है। भागवन्ती का बलवान् शरीर, निस्सार होकर, रघुनाथ के कन्धे पर झूम गया। कन्धा आँसुओं से गीला हो गया।

"मेरा कसूर—मेरा गँवारपन—मैं उजड्ड—मेरा अपराध—मेरा पाप मैंने क्या-क्या कह डा—डा—डा आ—" घिग्घी बँध चली।

उसका मुँह बन्द करने का एक ही उपाय था। रघुनाथ ने वही किया।

उसने कहा था

(१)

बड़े बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्टवालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट संबंध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरीवाले, तंग चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढीवाले[1] के लिए ठहरकर, सब्र का समुद्र उमड़ाकर, 'बचो खालसा जी', 'हटो भाईजी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा[2]' कहते हुए सफ़ेद फेटों, खच्चरों और बतकों, गन्ने और खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं; चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढ़िया बार बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी बचनावली के नमूने हैं—हट जा, जीणे जोगिए; बच जा, करमा वालिए; हट जा, पुत्तां प्यारिए; बच जा। लंबी वालिए। समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बम्बूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान

---

१ गाड़ीवाले। २ बादशाह।

पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ हैं ?'

'मगरे में ;—और तेरे ?'

'माझे में ;—यहाँ कहाँ रहती है ?'

'अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ' उनका घर गुरुबज़ार में है।'

इतने में दुकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा—

'तेरी कुड़माई[1] हो गई ?' इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, या दूधवाले के यहाँ अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो तीन बार लड़के ने फिर पूछा, 'तेरी कुड़माई हो गई ?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसी ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तब लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली—'हाँ,हो गई।'

'कब ?'

'कल ;—देखते नहीं यह रेशम के कढ़ा हुआ सालू[2]।' लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ीवाले[3] की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

(२)

"राम राम, यह भी कोई लड़ाई है ! दिन-रात खंदकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाने से दसगुना जाड़ा, और मेंह और बरफ़ ऊपर से। पिंडलियों तक कीच में धँसे हुए हैं। गनीम[4] कहीं दिखाता नहीं ;—घंटे

---

१ सगाई। २ ओढ़नी। ३ खोमचेवाले। ४ दुश्मन।

दो घंटे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और सौ सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई खड़े। नगरकोट का जलजला[१] सुना था, यहाँ दिन में पचीस जलजले होते हैं। जो कहीं खंदक से बाहर साफ़ा या कुहनी निकल गई तो चटाक् से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खंदक में बिता ही दिये। परसों 'रिलिफ' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका[२] करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उस फरंगी[३] मेम के बाग में मखमल की सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।"

"चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मिल तक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—"

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों?" सूबेदार हजारासिंह ने मुसकुराकर कहा—"लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफ़सर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ़ बढ़ गये तो क्या होगा?"

"सूबेदारजी, सच है" लहनासिंह बोला—"पर करें क्या? हड्डियों में जो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता ही नहीं और खाई में दोनों तरफ़ से

१ भूकम्प। २ बकरा मारना। ३ फ्रेंच।

चंबे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाय।"

"उदमी[1] उठ सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाका के दरवाजे का पहरा बदला दे।" यह कहते हुए सूबेदार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—"मैं पाधा[2]। बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!" इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—"अपनी बाड़ा के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।"

"हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस गुना जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।"

"लाड़ीहोराँ[3] को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलानेवाली फरंगी मेम—"

"चुप कर। यहाँवालों को शरम नहीं।"

"देस देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाखू नहीं पीते वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा अब बोधसिंह कैसा है?"

"अच्छा है।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात भर तुम अपने दोनों कंबल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी[4] के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप

---

१ उधमी। २ पुरोहित। ३ लाड़ी होरा (स्त्री का आदर-वाचक शब्द)। ४ अँगीठी।

कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है और "निमोनिया" से मरनेवालों को मुरब्बे[1] नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोद में मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वजीरासिंह ने त्योरी चढ़ाकर कहा—"क्या मरने-मराने की बात लगाई है। मरे जर्मनी और तुरक। हाँ भाइयो, कुछ गाओ।
हाँ कैसे—

'दिल्ली शहर ते पिशौर नूँ जाँदिए
कर लेणा लौंगा दा व्यौपार मंडिए;
कर लेणा नाड़ेदा सौदा अड़िए—
(ओय) लाणा चटाका कदुए नूँ।
कद्दू बणाए मजेनार गोरिए,
हुण लाणा चटाका कदुए नूँ॥'[2]

कौन जानता था कि दाढ़ियोंवाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गायेंगे, पर सारी खंदक गीत से गूंज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

(३)

दो पहर रात हो गई है। अँधेरा है! सन्नाटा छाया हुआ है। बोधसिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कंबल बिछाकर और एक बरानकट[3] ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुंह पर है और एक बोधसिंह के दुबले शरीर पर। बोधसिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई, क्या है?"

"पानी पिला दो।"

---

१ नई नहरों के पास वर्ग-भूमि। २ 'ऐ दिल्ली शहर से पेशावर को जानेवाली। मण्डी (बाजार) में लौंगों का व्यापार कर लेना। अरी। नाड़े का सौदा भी कर लेना। ओय। अब हमें कद्दू चखना है। ऐ गोरे वर्णवाली।, कद्दू अत्यन्त स्वादिष्ठ पका है! अब हमें कद्दू चखना है। ३ ओवरकोट।

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—"कहो कैसे हो ?" पानी पीकर बोधा बोला—"कँपनी छुट रही है। रोम रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

"अच्छा मेरी जरसी पहन लो।"

"और तुम ?"

"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है ; पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता ; चार दिन से तुम मेरे लिए—"

"हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें।" यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो ?"

"और नहीं झूठ ?" यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज़ आई—"सूबेदार हजारासिंह !"

"कौन ? लपटन साहब ? हुकुम हुजूर" कहकर सूबेदार तनकर फ़ौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से जियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सब को साथ ले उनसे जा मिलो। ख़न्दक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कंबल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो

गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गये और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

"लो तुम भी पियो।"

आँखें मारते मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला—"लाओ, साहब।" हाथ आगे करते ही सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियोंवाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह कैदियों के से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौक़ा मिल गया है? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायँगे?"

"लड़ाई ख़त्म होने पर। क्यों क्या यह देश पसंद नहीं?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मज़े यहाँ कहाँ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी के ज़िले में शिकार करने गये थे"—"हाँ, "हाँ, हाँ—वहीं जब आप खोते[1] पर सवार थे और आपका खानसामा अबदुल्ला रास्ते के एक मंदिर में जल चढ़ाने को रह गया था?" "बेशक, पाजी कहीं का"—"सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपको एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफ़सर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजिमंट की मैस में लगायेंगे।" "हाँ, पर मैंने वह विलायत भेज दिया"—"ऐसे बड़े बड़े सींग! दो दो फुट के तो होंगे!"

"हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुम सिगरेट नहीं पिया?"

---

[1] गधे

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ"—कहकर लहनासिंह खंदक में घुसा। अब उसे संदेह नहीं रहा था और उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

"कौन? वजीरासिंह?"

"हाँ, क्यों लहना? क्या कयामत आ गई? ज़रा तो आँख लगने दी होती?"

(४)

"होश में आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।"

"क्या?"

'लपटन साहब या तो मारे गये हैं या कैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा है और बातें की हैं। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।"

"तो अब?"

"अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो एक काम करो। पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।"

"हुकुम तो यह है कि यहीं—"

"ऐसी तैसी हुकम की! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफ़सर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की ख़बर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तो तुम आठ ही हो!"

"आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ़ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने—

बिजली की तरह दोनों हाथों से उलटी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब "आँख! मीन गौट्ट[१]" कहते हुए चित्त हो गये। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खंदक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफ़ाफ़े और एक डायरी निकालकर उन्हें अपने जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—"क्यों लपटन साहब? मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगाएँ होती हैं और उनके दो फुट चार इञ्च के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानशामा मूर्त्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ़ उर्दू कहाँ से सीख आये? हमारे लपटन साहब तो बिना "डैम" के पाँच लफ़्ज भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने, मानों जाड़े से बचाने के लिए दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया—"चालाक तो बड़े हो पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिएँ। तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने को तावीज़ बँटता था और बच्चों को दवाई देता था।

१ हाय! मेरे राम! (जर्मन)।

चौधरी के बड़ के नीचे मंजा[1] बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनीवाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़-पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायँगे तो गोहत्या बन्द कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जानेवाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की डाढ़ी[2] मूड़ दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो—"

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरीमर्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपालक्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया—"क्या है?"

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि "एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया" और औरों से सब हाल कह दिया। बंदूकें लेकर सब तैयार हो गये। लहना ने साफ़ा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधीं। घाव मांस में ही था। पट्टिया के कसने से लहू बंद हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बंदूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तककर मार रहा था वह खड़ा था; और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े-से मिनटों में वे—

अचानक आवाज़ आई 'वाह गुरुजी की फतह! वाह गुरुजी का खालसा!' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन शुरू कर दिया।

---

१ खटिया। २ दाढ़ी।

एक किलकारी और—"अकाल सिक्खाँ दी फौज आई ! वाह गुरुजी दी फतह ! वाह गुरुजी दी खालसा !! सत्तस्रीरी अकाल[1] पुरुष !!!" और लड़ाई खतम हो गई। तिरसठ जर्मन तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कन्धे में गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया। और बाकी का साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में, 'दंतवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन, और कागज़ात पाकर, उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँचीं। फील्ड अस्पताल नज़दीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रखी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है; सवेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—तुम्हें बोधा की क़सम है और सूबेदारनीजी की सौगंद है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।

---

१ सत्यश्री।

"और तुम ?"

"मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।"

"अच्छा, पर—"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरों को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी से तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया। "वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।"

(५)

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ़ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ़ होते हैं; समय की धुंध बिलकुल उन पर से हट जाती है।

× × × ×

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्ज़ीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुड़माई हो गई ? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा—"हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू ?" सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

"वजीरासिंह, पानी पिला दे।"

पचीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं० ७७ राइफल्स जमादार हो

गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकद्दमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजीमेंट के अफ़सर की चिट्ठी मिली कि फ़ौज लाम पर जाती है। फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह को चिट्ठी मिली कि मैं और बोधसिंह भी लाम पर जाते हैं, लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे।

सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे तब सूबेदार बेढ़[1] में से निकलकर आया। बोला—"लहना, सूबेदारनी तुमको जानती हैं। बुलाती है। जा मिल आ।" लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से? रेजीमेंट के क्वाटरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

"मुझे पहचाना?"

"नहीं।"

"तेरी कुड़माई हो गई?—धत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटोंवाला सालू—अमृतसर में—"

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

"वजीरा, पानी पिला"—उसने कहा था।

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—"मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। तेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों[2] की घघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदार के साथ चली जाती? एक बेटा है। फ़ौज में भरती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी—"अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग!

---

१ ज़नाने। २ स्त्रियाँ।

तुम्हें याद है, एक दिन तांगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख़्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।"

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी[1] में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

× × ×

लहना का सिर अपनी गोदी पर रखे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

"कौन ? कीरतसिंह ?"

वजीरा ने कुछ समझकर कहा—हाँ।

"भइया मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट[2] पर मेरा सिर रख ले।"

वजीरा ने वैसा ही किया।

"हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस। अब के हाड़[3] में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।"

वजीरासिंह के आँसू टप्-टप् टपक रहे थे।

× × ×

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—

फ्रांस और बेलजियम—६८वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

———

१ घर के अन्दर की कोठरी—बैठक से भिन्न। २ जाँघ। ३ आषाढ़।